समरथ

अप्रैल-जून, 2020 ◆ नई दिल्ली

ए सड़कों तुम ठंडी रहना

ए सड़कों तुम ठंडी रहना
सूरज की ना फ़रमानी करना
गुज़र रहे हैं श्रम जीवी
काँधे लाधे अम्मा-बीबी
कोई बेटे का शव लटकाये
चला जा रहा शीश झुकाए
रोने से करता परहेज
क्वारंटीन में दें न भेज
जहाँ फेंक कर मिलती रोटी
निर्धन को नियति की बोटी
अपनी पलकों पे अश्रु छुपाए
शहरी निर्दयता बिसराए
गुमसुम बेटी पैडल मारे
बाइसकिल को पिता निहारे
सूटकेस का पहिया खोले
सुला पुत्र को खींचे हौले
जननी अपना धर्म निभाए
माह जेठ का और खिसयाए
भले बुरे सब मिलते पथ पर
गाली-गुल्ला फटकार अकथ पर
पुरवा अब भी दूर बहुत है
दुनिया अब भी क्रूर बहुत है
मेरी भी है भागीदारी
दुनिया सुंदर बनी न सारी
किंतु पथों से मेरा अनुनय
वह जीवन जो पूरा श्रममय
अपने खलिहानों जा पहुँचे

ए सड़कों तुम ठंडी रहना
सूरज की नाफ़रमानी करना

कवि का नाम दे सकते हैं पर ये कविता बिना कवि के नाम के पहुंचे। कवि मज़दूरों तक पहुंचना चाहता है। सड़क की तरह निर्मम हो चुके समाज तक पहुंचना चाहता है। अपने नाम तक नहीं।

अस्पतालों के लिए हम लड़े ही कब थे?
मंदिर और मस्जिद के लिए लड़े थे
और देखिए वो दोनों आज बंद हैं।

-बीरेंद्र रंजन

नाहि तो जनम नसाई

पिछले साल नवंबर में चीन के शहर वुहान से शुरू होने वाला संक्रमण जिसने कुछ महीनों में विकराल रूप धारण कर लिया था, अब पूरी दुनिया को अपनी लपेट में ले चुका है और इससे प्रभावित लोगों की संख्या दो करोड़ पार कर चुकी है जबकि लगभग छह लाख लोग मौत की गोद में समा चुके हैं। ऐसा ही एक वाइरस 100 साल पहले प्रकृति का कहर बनकर टूटा था और पांच करोड़ लोगों को निगल गया था। इन 100 वर्षों में चिकित्सा विज्ञान ने बड़ी उन्नति की है और विभिन्न बीमारियों और उससे बचाव के बारे में हमारा ज्ञान बढ़ा है। मगर इस प्रकार के संक्रमण यदाकदा मानव जाति के लिए बड़ा खतरा बनते रहे हैं और कोविड-19 इसका नवीनतम उदाहरण है। इसके आगे संसार के सबसे शक्तिशाली देश भी अपने विशाल संसाधनों के बावजूद बेबस नज़र आते हैं। यहाँ शायद यह कहना ग़लत नहीं है कि कुछ बड़े देशों के नेताओं के हास्यप्रद वक्तव्य भी इस संक्रमण के फैलाव के लिए जिम्मेदार हैं। अमरीका और ब्राजील इसके उदाहरण हैं जहाँ के मृतकों की संख्या दुनिया में सबसे अधिक है।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है यहाँ फरवरी में ही खतरे की घंटी बज चुकी थी और ऐसे संकेत साफ दिखाई दे रहे थे कि हमारा देश भी इसकी चपेट में आ सकता है। मगर हमने दुर्भाग्य से कोई सावधानी या चौकसी नहीं दिखाई और न ही इससे निपटने की कोई ठोस नीति बनाई। किसी अदृश्य मगर वास्तविक खतरे से निपटने के लिए थालियाँ, घंटियाँ या तालियाँ बजाने और दीये जलाने का भले ही कोई वैज्ञानिक आधार हो मगर सच यह है कि हमने जो भी कदम उठाए वो बहुत जल्दी में और उसके तमाम पहलुओं को ध्यान में रखे बिना ही उठाए। जनता कर्फ्यू के दो-तीन दिन बाद ही सिर्फ चार घंटे के नोटिस पर पूरे देश में पूर्ण लॉकडाउन का परिणाम कुछ ही दिनों में देश के राजमार्गों और रेल की पटरियों पर नज़र आने लगा। इस पूरे समय में क्रूरता, निर्ममता और असवंदेनशीलता के जो दुखद दृश्य देखने में आए वो हम सब की यादों का हिस्सा बन चुके हैं। कुछ एक टीवी चैनलों को छोड़कर पूरा मेन स्ट्रीम मीडिया करोड़ों लोगों पर पड़ी इस अचानक विपदा के प्रति उदासीन दिखाई दिया। उसे तो इस महामारी को एक विशेष समुदाय से जोड़ने में भी कोई शर्म महसूस नहीं हुई। इसके फलस्वरूप कुछ ऐसी घटनाएं भी हुईं जिससे हर सभ्य समाज को शर्मसार होना पड़े।

लेकिन इस आपदा ने यह भी दिखाया कि प्रकृति का कोई कहर मानव संकल्प को पराजित नहीं कर सकता। पूरी दुनिया में डॉक्टर, नर्सें अन्य चिकित्साकर्मी और सफाई कर्मचारी जिस तरह इस आपदा के आगे डटकर खड़े हैं वह सराहनीय है। इस दौरान हम ऐसे असंख्य दृश्य और घटनाओं से रू-ब-रू हुए जो यह दर्शाती हैं कि मानवता किसी भी हाल में मर नहीं सकती। इस महामारी के आरंभिक दिनों की ऐसी घटनाओं की कुछ झलक आपको समरथ के इस अंक में भी नज़र आएगी। हमने खुद आवासीय सोसाइटियों के गेटों पर सोशल डिस्टेंसिंग के नाम पर 'अस्पृश्यता' से जूझती फ्लैटों में काम करने वाली बाइयों को एक-दो सप्ताह के वेतन के लिए घंटों इंतजार करते देखा है और उन्हें एक-दूसरे की सहायता करते भी। समाज के हर वर्ग और विशेषत: जन-साधारण का अपने सीमित संसाधनों या यूं कहिये कि दो वक्त की रोटी का सहारा न होने पर भी दूसरों के दुख दर्द का भागीदार बनना एक निर्मम और क्रूर समाज की आँख खोलने के लिए काफी है।

सच यह है कि इस संक्रमण के समाप्त होने के पश्चात हमारी दुनिया अब पहले जैसी नहीं रह जाएगी। इसने जो आर्थिक संकट पैदा किया है उसके दूरगामी परिणाम होंगे। इसने हमारी जर्जर स्वास्थ्य सेवाओं की भी पोल खोल दी है और हमें सचेत किया है कि कैसे कोई बड़ा झटका अचानक देश की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को आर्थिक रूप से बेसहारा, बेबस और असहाय कर सकता है। प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार के संकट से निपटने के लिए हम अपनी आर्थिक व्यवस्था में कुछ ऐसे मूल परिवर्तन करने के लिए वचनबद्ध हो सकते हैं जो ठोस, वास्तविक और मानवीय बुनियादों पर आधारित हों और जिसमें समाज के हर वर्ग के हितों और विशेषत: हाशिए पर रहने वालों की आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित किया गया हो।

वाया फेसबुक...

मोहम्मद अफजल चौधरी की वाल से
अनिमेष मुखर्जी की पोस्ट

आप और हम इस छोटे बच्चे से बड़ा दिल नहीं रख सकते

दुआ करिए कि मोहित जैसी दरियादिली का थोड़ा-सा हिस्सा हम सब में भी आए

आज घर के सामने बने मार्किट में एक बुड्ढे बुढ़िया लोगों से पैसे मांग रहे थे। पुरुष व्हील चेयर पर था और महिला उसके साथ थी। ये बच्चा लगभग 500 मीटर दूर बांट रहे खाने से अपने लिए दो पैकेट मांग कर लाया था। इसने दोनों पैकेट उन्हें दे दिए, जबकि उसके खुद के पास खाने को नहीं था। मैंने पूछा कि क्यों दे दिया, तो बोला कि टूटी टांग लेकर कहाँ लाइन में खड़े होते।

मैंने पूछा कि खुद क्या खाओगे, तो बोला एक ब्रेड पकौड़ा खिलवा दीजिए।

थोड़ी और बातचीत में पता चला कि भाई साहब का नाम मोहित है। मोहित राजस्थान से है। मां जयपुर में लॉक डाउन शुरू होने के पहले से फंसी हैं और ये अपने भाई के साथ यहीं है। तीन महीने से जैसे-तैसे काम चल रहा है।

मोहित से थोड़ी और बात की तो पता चला कि एक दिन पहले कोई शख्स राशन बांट रहे थे तो इसने 2.5 किलो चीनी और 5 किलो आटा लिया। चीनी बुजुर्ग भिखारिनों में बाँट दी, क्योंकि उसका मोहित के लिए काम नहीं था। आटा इसने उन्हीं के पास रख छोड़ा कि शाम को घर ले जाएगा। साफ बात है कि मोहित को आटा वापस नहीं मिला। मोहित को इस बात का कोई ग़म नहीं।

मोहित की मदद के लिए पूछा, तो बोला कि ज़रूरत होगी तो मांग लूंगा। मुझसे ब्रेड पकौड़ा और एक भुजिया का पैकेट लेने के अलावा एक और सज्जन से मोहित को पेप्सी की बोतल मिल गयी थी। फिलहाल उसके लिए इतना बहुत है। मोहित की बड़ी चिंता तीन महीने का किराया है, जिस पर मकान मालिक कोई छूट नहीं दे रहा। हालांकि उसे पता है कि मोदी जी ने छूट देने को बोला है। खैर, दुआ करिए कि मोहित जैसी दरियादिली का थोड़ा सा हिस्सा हम सब में भी आये। ये शहर मुम्बई न हो, लेकिन मोहित किसी सुल्तान मिर्ज़ा से कम नहीं।

कोरोना वायरस के दौर में फुले परिवार का प्रेरणाप्रद स्मरण

जब माँ-बेटे ने प्लेग रोगियों की सेवा करते हुए जान गंवाई

हिंदुस्तान में स्त्री शिक्षा की नींव सावित्रीबाई फुले ने रखी थी। लेकिन कम ही लोगों को जानकारी है कि उन्होंने और उनके बेटे यशवंत फुले ने बंबई और पूना में बुबोनिक प्लेग महामारी से पीड़ित लोगों की सेवा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी। उनकी इस भूमिका को आज याद करना बहुत जरूरी है, जब पूरा विश्व कोरोना महामारी का सामना कर रहा है।

■ **सिद्धार्थ**

गहन मानवीय संवेदना और न्यायपूर्ण विश्वदृष्टिकोण फुले दंपति (ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले) को उन्नींसवी सदी के भारतीय इतिहास को मोड़ देने वाली अग्रणी शख्सियतों में शामिल कर देता है। यह दंपति जहां एक ओर आर्य-ब्राह्मण श्रेष्ठता के वर्चस्व की वैचारिकी को चुनौती देते हुए वर्ण-जाति व्यवस्था एवं पितृसत्ता के समूल नाश के लिए आजीवन संघर्ष करते रहे, वहीं मानव जाति पर आपदा आने की स्थिति में उन्होंने मानव-मात्र की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

उस दौर में महाराष्ट्र में पड़े अकाल और प्लेग जैसी महामारी में फुले दंपति की भूमिका को आज याद करना अत्यन्त जरूरी है, जब पूरा विश्व कोरोना महामारी का सामना कर रहा है। 15 लाख से ज्यादा लोग इस वायरस से संक्रमित हो चुके हैं और करोड़ों लोगों के सामने रोजी-रोटी का गंभीर संकट खड़ा हो गया है।

अकाल के दौरान मानवता की सेवा

ऐसी ही तीन बड़ी मानवीय विपदा फुले दंपति के जीवन काल में भी घटित हुईं। 1876-77 में महाराष्ट्र में भयानक अकाल पड़ा। इस अकाल की भयावहता का वर्णन सावित्रीबाई फुले ज्योतिबा फुले को लिखे पत्र में इन शब्दों में करती हैं

''जिधर देखो पशु-पक्षी अन्न व पानी के बिना तड़प-तड़पकर मर रहे हैं। उनकी लाशें चारों तरफ फैली हुई हैं। इंसानों के जिंदा रहने के लिए अनाज नहीं है। पशुओं के लिए चारा और पानी नहीं है। इस भयंकर आपदा से बचने के लिए गांव के गांव पलायन कर रहे हैं। कुछ मां-बाप अपने जिगर के टुकड़े बच्चे व जवान बेटियों को बेचकर, अपने लिए दो वक्त की रोटी के जुगाड़ के लिए मजबूर हो गए हैं।''

इस स्थिति में फुले दंपति द्वारा स्थापित 'सत्यशोधक समाज' अकाल पीड़ितों को राहत पहुंचाने में लग गया। सावित्रीबाई फुले और ज्योतिबा फुले दोनों अलग-अलग जगहों पर पीड़ितों की मदद कर रहे थे। इस अकाल के दौरान बड़ी संख्या में बच्चे अनाथ हो गए थे, जिनकी शिक्षा का कोई बंदोबस्त नहीं था। फुले दंपति ने अकाल में अनाथ हुए बच्चों के लिए 52 स्कूल खोले, जिसमें बच्चों के रहने, खाने-पीने और पढ़ने का इंतज़ाम था।

फुले दंपति के नेतृत्व में 'सत्यशोधक समाज' ने अपनी पहल पर लोगों को अनाज एवं भोजन उपलब्ध कराने के लिए 'अकाल निवारण समिति' का गठन किया। यह समिति लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था करने के साथ-साथ अकाल पीड़ितों को इस कठिन स्थिति का सामना करने के लिए मानसिक तौर तैयार करने में भी लगी रही। समिति का मानना था कि ऐसे समय में लोगों का हौसला बनाए रखना जरूरी है। सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता गांवों का दौरा करते थे। विभिन्न स्रोतों से अनाज का इंतजाम कर लोगों के खाने की व्यवस्था करते और उन्हें कैसे इस अकाल का सामना करना है, इसके लिए जानकारियां देते।

अकाल के दौरान सत्यशोधक समाज के कार्यों की भूरी-भूरी प्रशंसा उस समय के अंग्रेज अधिकारियों ने भी की। इस संदर्भ में अपने उपरोक्त पत्र में सावित्रीबाई फुले लिखती हैं— 'कलेक्टर ने कहा कि आप सत्यशोधक समाज के लोग लोकहित का कल्याणकारी कार्य कर रहे हैं। आपके इस नेक काम में मेरी ओर से हमेशा सहायता मिलती रहेगी, आपके इस दिव्य सेवा कार्य में मैं आपके कुछ काम आ सकूं तो मुझे बेझिझक बताएं, मैं इस कार्य में आपकी मदद करता रहूंगा।'

28 नवंबर 1890 को ज्योतिबा फुले की मृत्यु के बाद सावित्रीबाई फुले ने मानवीय त्रासदी के समय मनुष्य मात्र की सेवा करने की भावना एवं संकल्प को जारी रखा। 1896 में एक बार फिर पुणे और आस-पास के क्षेत्रों में अकाल पड़ा। सावित्रीबाई फुले ने अकाल पीड़ितों को मदद पहुंचाने के लिए दिन-रात एक कर दिया। उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि वह अकाल पीड़ितों को बड़े पैमाने पर राहत सामग्री पहुंचाए। इस समय सत्यशोधक समाज का नेतृत्व सावित्रीबाई फुले कर रही थीं। उन्होंने सत्यशोधक समाज के हजारों कार्यकर्ताओं को अकाल पीड़ितों की मदद करने के काम में लगा दिया और खुद भी लोगों को मदद पहुंचाने के काम में पूरी तरह जुट गईं।

प्लेग पीड़ितों के इलाज के दौरान प्राणों की आहुति— 1897 में मुंबई, पुणे और उसके आस-पास के इलाकों में प्लेग फैल गया। लाशों के ढेर लग गए। घर-परिवार के लोग भी बीमार लोगों को छोड़कर भागने लगे। लाशों का अंतिम संस्कार करने वाले भी नहीं मिल रहे थे। ऐसे समय में सावित्रीबाई फुले ने अपने डाक्टर बेटे यशवंत के सहयोग से लोगों के इलाज का इंतजाम किया। यशवंत ने पुणे में मरीजों के लिए एक क्लिनिक खोला, जहां प्लेग के पीड़ितों का इलाज किया जाता था। प्लेग के शिकार एक ऐसे ही मरीज को इलाज के लिए लाते समय सावित्रीबाई खुद भी प्लेग का शिकार हो गईं और 10 मार्च, 1897 को उनकी मृत्यु हो गई।

सावित्रीबाई फुले ने मानव-मात्र के लिए जीवन जीया, तो जरूरत पड़ी तो मृत्यु का भी वरण किया। यशवंत फुले इसके बाद सेना में नौकरी करने चले गए। 1905 में पुणे में फिर से प्लेग फैला तो वे इलाज करने के लिए पुणे लौटे और मरीजो से उनको संक्रमण हो गया और 1905 में उनका निधन हो गया।

फुले परिवार के योगदान को याद करते हुए महाराष्ट्र सरकार ने 2009 में पुणे से कुछ दूर नायगांव में 14 भित्ती चित्रों के जरिए उन घटनाओं को स्थायी तौर पर दर्ज किया, जो इस परिवार ने प्लेग पीड़ितों की सेवा के लिए किया।

बहुजन-श्रमण परंपरा के केंद्र में गहन मानवीय संवेदना और मानव-मात्र के प्रति करूणा रही है, जिसकी आधुनिक काल में मिसाल फुले-दंपति ने कायम की। आज जब दुनिया महामारी और मानवीय त्रासदी से जूझ रही है, ऐसे समय में फुले दंपति को याद करना और मानवीय आपदा के समय में उनके जीवन एवं कार्यों से प्रेरणा लेकर मानव जाति को इससे उबारने में मदद पहुंचाकर ही, हम उनकी विरासत को आगे बढ़ा सकते हैं।

साभार : https://hindi.theprint.in/

[लॉकडाउन के दौरान कोरोना हीरोज़-1]

किसान ने बाँट दी अपनी गेहूँ की फसल ताकि गरीबों के घर जल सके चूल्हा

दत्ता राम ने सोचा था कि इस साल की फसल के पैसों को वह ट्रैक्टर खरीदने के लिए लगाएंगे। लेकिन अपने गाँव के गरीब मजदूरों की स्थिति उनसे देखी नहीं गई और उन्होंने उनकी मदद करने की ठानी!

■ **निशा डागर**

''साँई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।''

संत कबीर के इस दोहे का अर्थ है कि मुझे बस इतना चाहिए जिसमें मेरा और मेरे परिवार का निर्वाह हो जाए। साथ ही, अगर कोई मेरे दर पर आए तो मैं उसे भी खाना खिला सकूँ।

नासिक के एक किसान ने मुझसे कुछ ऐसा कहा कि मुझे यह दोहा याद आ गया। उन्होंने कहा, 'मेरे पास एक रोटी है और मैं किसी ज़रूरतमंद को अगर आधी रोटी दे दूँ तो क्या हर्ज है। थोड़ी ही सही उसकी कुछ मदद तो हो जाएगी।'

यह किसान है 41 वर्षीय दत्ता राम राव पाटिल, जिन्होंने कुछ दिन पहले अपने गाँव के पास रहने वाली गरीब महिलाओं को अनाज बांटा है।

नासिक में निफाड तालुका स्थित सुकेणा कस्बे के निवासी दत्ता राम के परिवार में उनके माता-पिता, पत्नी और दो बच्चे हैं। भाई नासिक में रहकर नौकरी करते हैं। मीडिया से बात करते हुए उन्होंने बताया कि उनकी तीन एकड़ ज़मीन है, जिस पर वह खेती करते हैं।

'मैंने ग्रैजुएशन तक पढ़ाई की है। लेकिन मेरे पिताजी की तबीयत ठीक नहीं रहती थी और उनकी बाईपास सर्जरी हुई थी। इसलिए मैंने खेती करना शुरू किया और अपनी इस तीन एकड़ ज़मीन पर मैं अब गेहूं और सोयाबीन जैसी फसलें उगाता हूँ,' उन्होंने कहा।

इस बार भी उन्होंने गेहूं की अच्छी फसल अपने खेतों से ली थी और कुछ दिन पहले कटाई भी हो गई थी। इंतज़ार था तो बस इसे मंडी पहुंचाने का। दत्ता राम को अपने खेतों के लिए ट्रैक्टर की ज़रूरत थी और उन्होंने सोचा था कि फसल को बेचने से जो पैसे मिलेंगे, उसे वह ट्रैक्टर खरीदने में लगाएंगे।

किस्मत को शायद कुछ और ही मंजूर था

वह आगे बताते हैं, 'एक दिन गाँव के पास ही कच्ची बस्तियों में रहने वाली एक महिला हमारे यहाँ आई। उन्हें कहीं काम नहीं मिल रहा था। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं उन्हें अपने घर का कुछ बचा हुआ खाना दे सकता हूँ क्या? इससे उनके बच्चों का पेट भर जाएगा।'

दत्ता को यह सुनकर बहुत ही बुरा लगा कि एक तरफ हम कोरोना वायरस से लड़ रहे हैं। वहीं, दूसरी तरफ देश के न जाने कितने लोगों के लिए दो वक्त का खाना जुटा पाना भी ज़िंदगी और मौत का सवाल हो जाता है। उन्होंने उस महिला से पूछा कि उनके यहाँ बस्तियों में कितने लोग रहते हैं।

'उसने बताया कि लगभग 150 परिवार होंगे और किसी के पास अभी कोई काम नहीं है। सबके हालात बुरे हैं। मैंने सोचा कि हम अपने स्तर पर क्या कर सकते हैं? मेरे सामने उस समय मेरे खेतों में पड़ा हुआ अनाज ही था। इसलिए मेरे दिमाग में आया कि शायद हम गेहूं देकर इनकी कुछ मदद कर पाएं', उन्होंने आगे कहा।

दत्ता राम ने जब इस बारे में अपने माता-पिता से पूछा तो उन्होंने तुरंत हाँ कर दी। उनके पिता ने कहा कि हम और दो साल बाद ट्रैक्टर ले लेंगे। फ़िलहाल, ज़रूरी यह है कि किसी

शेष पृष्ठ 10 पर

[लॉकडाउन के दौरान कोरोना हीरोज़-2]

गाड़ी को एंबुलेंस बना, गाँवों के मरीज़ों को अस्पताल पहुँचा रहा है यह शख्स!

''लॉकडाउन आज की ज़रूरत है लेकिन इसके दौरान अगर ज़रूरतमंद लोगों को मूलभूत सुविधाएं न मिलें तो यह हमारी हार ही होगी।''

■ **निशा डागर**

''**लॉकडाउन** आज की ज़रूरत है क्योंकि अगर हमने एहतियात नहीं बरतीं तो हमारी स्थिति भी अन्य देशों की तरह हो सकती है। लेकिन इसके साथ-साथ हमारे यहाँ की बुनियादी व्यवस्थाओं को दुरुस्त करने की भी ज़रूरत है। खाने-पीने और स्वास्थ्य सेवाएं जैसी सुविधाएं नागरिकों को न मिलें तो ये भी हमारी हार है,'' यह कहना है उत्तराखंड के देवप्रयाग में भल्लेल गाँव के रहने वाले 32 वर्षीय गणेश भट्ट का।

23 मार्च, 2020 से गणेश अपने इलाके के लोगों की मदद में जुटे हुए हैं। उन्होंने अपनी नैनो कार को एम्बुलेंस बना लिया है और जैसे ही उन्हें मदद के लिए किसी का फ़ोन आता है, वह तुरंत गाड़ी लेकर निकल जाते

हैं। गणेश ने बताया कि अब तक उन्होंने 24 मरीजों को सही वक्त पर अस्पताल पहुँचाया है, जिनमें गर्भवती महिलाओं से लेकर बच्चे तक शामिल है।

'पहाड़ों में लोगों तक मूलभूत सुविधाएं पहुंचना वैसे भी बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि गांवों से शहर पहुँचने के रास्ते दुर्गम हैं और कितनी बार तो खबरें आती हैं कि अस्पताल पहुँचने से पहले ही मरीज़ की मौत हो गई या फिर सड़क पर ही किसी की डिलीवरी हो गई,' उन्होंने बताया।

वह आगे कहते हैं कि उन्होंने किसी मरीज़ की मदद के लिए अस्पताल में फ़ोन किया था और उन्हें एम्बुलेंस भेजने के लिए कहा। लेकिन उन्हें वहां से जवाब मिला कि उनके क्षेत्र में काम करने वाली तीनों एम्बुलेंस किसी तकनीकी समस्या के चलते नहीं आ सकतीं हैं। ऐसे में, उन्हें आइडिया आया कि क्यों न वह खुद अपनी ही गाड़ी को लोगों की मदद के लिए इस्तेमाल करें।

'फ़िलहाल, आपसे बात करते हुए भी मैं अस्पताल में ही हूँ। बस अभी चंद मिनट पहले मूल्या गाँव के एक 13 साल के बच्चे को लेकर आया हूँ। उसका हाथ टूट गया है और बच्चा दर्द के मारे कराह रहा है। अभी डॉक्टर देख रहे हैं तो तसल्ली है,' उन्होंने बताया।

गणेश ने अपनी इस पहल के बारे में सोशल मीडिया पर पोस्ट किया और उन्होंने अपनी गाड़ी पर भी एक स्टीकर चिपका दिया है। कोई भी आपातकालीन स्थिति में उन्हें फ़ोन कर सकता है और वह तुरंत मदद के लिए पहुँचते हैं।

उनकी इस पहल को देखकर और भी 2-3 नेकदिल लोग मदद के लिए आगे आए हैं। ये सभी ज़िम्मेदार नागरिक, मदद के लिए फ़ोन आते ही अपने काम पर लग जाते हैं।

लॉकडाउन के दौरान इस काम में किसी परेशानी के बारे में पूछने पर वह कहते हैं कि पुलिस विभाग और प्रशासन के लोग अब मेरी कार को पहचानते हैं। अगर कोई नहीं पहचान पाता तो हम उनके सभी सवालों का जवाब देते हैं और फिर गाड़ी में मरीज़ को देखकर उन्हें खुद ही अंदाज़ा लग जाता है।

'अगर आप ज़िम्मेदारी पूर्वक काम कर रहे हैं तो सभी लोग आपका साथ देंगे। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे अगर किसी के लिए कुछ करने के मौका मिला है तो मैं पीछे क्यों हटूँ। लोगों की सेवा करना मेरा सौभाग्य है।'

गणेश के मुताबिक पिछले आठ दिनों में उन्होंने शायद हज़ार किलोमीटर तक गाड़ी चला ली होगी। क्योंकि वह सिर्फ देवप्रयाग नहीं बल्कि पास के विकासखंड जैसे कीर्तिनगर के दूरगामी क्षेत्रों तक भी मदद के लिए पहुँच रहें हैं। हर दिन वह कम से कम 4 मरीज़ों को अस्पताल तक पहुंचाते हैं। स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने के साथ-साथ, वह ज़रूरतमंदों तक राशन और दवाइयां भी पहुँचा रहे हैं।

'दो दिन पहले ही हमें पता चला कि कुछ मजदूर परिवारों के यहाँ राशन खत्म हो गया है। यहाँ पर नेशनल हाइवे-58 बंद होने की वजह से बहुत से इलाके शहरों से जैसे कट गए हैं। हमने मिलकर उन लोगों के लिए 25 किलो चावल, कुछ किलो दाल और तेल का इंतजाम किया। हमने इसे उस इलाके की पुलिस टीम तक पहुंचा दिया है और जल्दी ही यह उन लोगों तक पहुँच जाएगा,' उन्होंने कहा।

यह पहली बार नहीं है जब गणेश भट्ट किसी की मदद कर रहे हैं। देवप्रयाग में कंप्यूटर टीचिंग का इंस्टीट्यूट चलाने वाले गणेश गरीब बच्चों को मुफ्त में पढ़ाते हैं। उनका उद्देश्य अपने लोगों की मदद करना है।

वह कहते हैं कि हम हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठ सकते। अगर हम अपने स्तर पर कुछ करने के लायक हैं तो हमें ज़रूर करना चाहिए। जब आप खुद किसी की मदद के लिए हाथ बढ़ाएंगे तो और चार हाथ आपकी मदद के लिए आ जाएंगे।

उन्होंने सोशल मीडिया पर अपने इस अभियान के बारे में पोस्ट किया तो पौड़ी के एक सज्जन ने उन्हें फ़ोन करके कहा, 'गणेश जी, आप बहुत नेक काम कर रहे हैं। मैं भी आपकी मदद करना चाहता हूँ, और कुछ तो मुझसे नहीं होगा लेकिन अगले तीन दिन के लिए आपकी गाड़ी के तेल का खर्च मैं उठाऊंगा। बस आपकी गाड़ी रुकनी नहीं चाहिए।'

गणेश भट्ट कहते हैं कि इस एक फ़ोन ने उनके इरादों को और हौसला दिया। उन्होंने ठाना है कि पूरी ज़िंदगी उनकी यह मदद की मुहिम चलती रहेगी। लेकिन उन्हें इस पहल में हम सबका साथ चाहिए।

[लॉकडाउन के दौरान कोरोना हीरोज़-3]

रोगियों की सेवा के लिए अफ्रीका की आरामदायक ज़िंदगी छोड़ मुंबई लौटी डॉ. दिव्या

''संकट के समय अगर मैं अपने देश की मदद नहीं कर सकती हूं तो मेरे डॉक्टर होने का कोई मतलब नहीं है।'' डॉ. दिव्या लोगों की सेवा में दिन-रात लगी हुई हैं। वह पूरा दिन पीपीई किट पहनती हैं इसके लिए उन्होंने अपने बाल तक कटवा लिए हैं।

■ **पूजा दास**

डॉ. दिव्या बताती हैं, 'जब हम छोटे थे तो सैनिकों का अपने देश के लिए बलिदान देने और युद्ध के मैदान में सबसे आगे खड़े रहने की कहानियां सुनते थे। इसलिए जब इस तरह का संकट आया, तो मुझे पता था कि मुझे रोगियों की सेवा करनी है।'

डॉ. दिव्या सिंह ने जवाहरलाल इंस्टीट्यूट ऑफ पोस्टग्रैजुएट मेडिसिन एंड रिसर्च (JIPMER) से जनरल सर्जरी में एम.एस. किया है और केवल तीन महीने पहले अपने पति के साथ अफ्रीका के जिबूती शहर शिफ्ट हुई थी। डॉ. सिंह के पति भारतीय विदेश सेवा के साथ काम करते हैं।

लेकिन कोविड-19 महामारी के प्रसार के बारे में खबर सुनने पर, उन्हें लगा की अपने देश में डॉक्टरों की ज़्यादा ज़रूरत होगी और उन्होंने भारत लौटने का फैसला किया।

डॉ. सिंह बताती हैं, 'मैं मार्च के पहले सप्ताह तक भारत लौट आई थी और तब पॉज़िटिव मामलों की संख्या 400 से कम थी। एक हफ्ते के भीतर, व्हाट्सएप के ज़रिए मुंबई स्थित एक स्वयंसेवक समूह ने मदद के लिए संपर्क किया। उन्हें वर्ली और धारावी स्लम क्षेत्रों में महामारी निगरानी में मदद के लिए मेडिकल पेशेवरों की ज़रूरत थी।'

एक महीने से, डॉ. सिंह इन्फ्लूएंजा जैसे लक्षणों वाले व्यक्तियों की पहचान करने के लिए घर-घर जाकर सर्वेक्षण कर रही हैं।

डॉ. सिंह बताती हैं, 'उस क्षेत्र में काम कर रहे 10 डॉक्टरों का हमारा एक समूह है। सर्वे के दौरान हम लोगों से कुछ प्रश्न पूछने थे, जैसे कि क्या हाल-फिलहाल उन्होंने कहीं यात्रा की है या क्या वे किसी कोविड-19 रोगी के संपर्क में रहे हैं और अगर उनमें किसी तरह के लक्षण दिखाई देते हैं तो हम स्वाब एकत्र करते हैं जो परीक्षण के लिए बाहर भेजा जाएगा। प्रत्येक दिन पॉजिटिव मामलों की संख्या में वृद्धि के साथ यह प्रक्रिया आज भी जारी है।'

इसके अलावा, उन्होंने अन्य डॉक्टरों के साथ एक क्राउड फंडराइज़र भी आयोजित किया है। ये डॉक्टर मुंबई सर्जिकल

सोसायटी का हिस्सा हैं और पीपीई किट की कमी को हल करने के लिए फंड जुटा रहे हैं।

डॉ. सिंह बताती हैं, 'मार्च के अंत तक, भारत में मामले बढ़ने लगे और बीएमसी ने सावधानी बरतते हुए अस्थायी बुखार क्लीनिक स्थापित करना शुरू किया। कुछ ही हफ्तों के भीतर मैंने पॉजिटिव मामलों की प्रतिदिन औसत संख्या 2 से 20 तक बढ़ते हुए देखा है। लेकिन इस सब के दौरान, मैं देख सकती थी कि मेरे आसपास के सभी स्वास्थ्य कर्मचारी महामारी से लड़ने के लिए लगातार काम कर रहे थे।'

इन सबके बीच, डॉ. सिंह ने अपने बालों को काटने का फैसला किया और इसे एक एनजीओ को दान कर दिया, जो कैंसर रोगियों के लिए विग बनाता है।

हालांकि, ऐसी महामारी के समय घर से बाहर निकलने और वॉलन्टियर के रूप में काम करने के फैसले को लेकर डॉ. सिंह के माता-पिता शुरू में डरे हुए थे। लेकिन अब संकट की इस स्थिति के समय अपनी बेटी की समाज की सेवा करने की भावना पर उन्हें गर्व है।

डॉ. सिंह कहती हैं, 'बहुत से लोगों ने मुझसे पूछा है कि ऐसे समय में जब अफ्रीका, जो कोविड-19 के बहुत कम मामलों वाले देशों में से एक है, वहां से वापस आने के लिए इस तरह के कठोर निर्णय लेने के लिए किसने प्रेरित किया है। इस सवाल के लिए मेरा जवाब काफी सरल है : यह मेरा कर्तव्य था। हालांकि, मैं अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद केवल एक साल से प्रैक्टिस कर रही थी लेकिन मेरा मानना है कि एक बार जब आपने समाज की सेवा करने की ओर कदम उठाया है तो जब तक यह पूरा ना हो जाए, पीछे नहीं लौटना चाहिए।

ताकि गरीबों के घर जल सके चूल्हा

पृष्ठ 6 का शेष

को खाने के दो निवाले मिलें।

दूसरे ही दिन, दत्ता राम और उनकी पत्नी ने इन महिलाओं को अनाज बांटना शुरू कर दिया। उन्होंने तय किया कि वह अपनी एक एकड़ ज़मीन का अनाज बांटेंगे। उन्होंने किसी को 5 किलो तो किसी को 7 किलो अनाज दिया। वह बताते हैं कि जिनके घर की स्थिति बहुत ही खराब है, उन महिलाओं को उन्होंने ज्यादा अनाज दिया।

'बहुत सी महिलाएं विधवा हैं तो किसी के घर में मरीज़ हैं। जिनकी देखभाल उन्हें करनी पड़ती है। हमने सबकी ज़रूरत के हिसाब से उनकी मदद करने की कोशिश की,' उन्होंने कहा।

दत्ता राम की इस पहल के बारे में जैसे ही खबर छपी। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ऑफिस से लेकर बहुत से आम लोगों ने उनकी सराहना की। वह बताते हैं कि इसके बाद उन्हें मदद के लिए भी बहुत से फ़ोन आए।

'मुझे अमेरिका से अरुण नाम के एक व्यक्ति का फ़ोन आया। वह पैसे देना चाह रहे थे लेकिन मैंने उनसे कहा कि पैसों से वे सरकार की मदद कर सकते हैं। मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है। इसी तरह एक एनजीओ ने भी संपर्क किया था लेकिन मैंने उन्हें कहा कि मुझे पैसे देने की बजाय आप इन लोगों की सीधा मदद करें।'

दत्ता राम की इस कोशिश ने पूरे देशवासियों का दिल जीत लिया है। किसी ने सही ही कहा है कि इंसान पैसे से नहीं बल्कि दिल से अमीर या गरीब होता है। उनके अपने घर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है लेकिन फिर भी उन्होंने अपने हित से बढ़कर सोचा।

'अभी भी मुझे दूसरी जगहों से फ़ोन आ रहे हैं कि और भी लोगों को मदद की ज़रूरत है। अभी भी अगर कोई खेत पर आ रहा है तो हम उसे गेंहूं दे रहे हैं। मैं उन्हें मना नहीं करना चाहता लेकिन मेरी क्षमता इतनी ही है। अंत में मैं लोगों से यही कह सकता हूँ कि डरे नहीं, एक-दूसरे की मदद करें और अपना व अपने परिवार का ख्याल रखें,' उन्होंने कहा।

अगर दत्ता राम राव पाटिल की इस नेकदिल कदम ने आपके मन को भी छुआ है तो आप भी अपने आस-पास किसी ज़रूरतमंद की मदद करें।

[लॉकडाउन के दौरान कोरोना हीरोज़-4]

सेलिब्रिटी कर रहे ज़रूरतमंदों की हर संभव मदद

दो महीने से पूरे देश में लॉकडाउन चल रहा है। लोगों को परेशानियों का सामना करना पड़ रह है। देश भर में लाखों प्रवासी श्रमिक हैं जो अपने घर वापस जाने का रास्ता ढूंढ रहे हैं। इस कठिन समय में कई गैर-सरकारी संगठन, सामाजिक सेवा समुदाय और मशहूर सेलेब्रिटी सामने आए हैं और ज़रूरतमंदों को ज़रूरी सामान, भोजन, आश्रय और परिवहन के साधन मुहैया कराने में मदद कर रहे हैं।

■ **पूजा दास**

सोनू सूद

बॉलीवुड अभिनेता

कर्नाटक और महाराष्ट्र की सरकारों से अनुमति प्राप्त करने के बाद, अभिनेता सोनू सूद ने मुंबई में फंसे प्रवासियों के लिए भोजन किट के साथ बसों की व्यवस्था की। उन्होंने पंजाब में डॉक्टरों को 1500 से अधिक पीपीई किट भी दिए हैं। साथ ही उन्होंने अपने मुंबई के होटल को चिकित्साकर्मियों को रहने के लिए दे दिया है। सोनू ने एक बयान में कहा, 'हर भारतीय इस संकट में अपने परिवारों और प्रियजनों के साथ रहने का हकदार है। इन प्रवासियों को छोटे बच्चों और बूढ़े माता-पिता के साथ सड़कों पर चलते देखना मेरे लिए बहुत मुश्किल था।' सोनू ट्विटर के ज़रिए भी हर उस व्यक्ति तक मदद पहुंचा रहे हैं, जो घर जाने की राह देख रहा है।

रकुल प्रीत सिंह

बॉलीवुड अभिनेत्री

इस लॉकडाउन के दौरान, अभिनेत्री रकुल प्रीत सिंह अपने परिवार के साथ 200 से अधिक परिवारों के लिए भोजन पका रही हैं। भोजन उनके अपार्टमेंट परिसर में बनाया जाता है और गुरुग्राम में जरूरतमंद परिवारों को वितरित किया जाता है। द टाइम्स ऑफ इंडिया को रकूल ने बताया, 'हम उन सभी लोगों के लिए एक दिन में दो समय का भोजन देने की कोशिश कर रहे हैं। हमने फैसला किया है कि जब तक लॉकडाउन रहेगा, हम भोजन प्रदान करते रहेंगे।'

विकास खन्ना

स्टार शेफ

लॉकडाउन के दौरान न्यूयॉर्क में होने के बावजूद, स्टार शेफ विकास खन्ना ने सुनिश्चित किया है कि भारत में पीड़ितों तक हर संभव मदद पहुंचाई जा सके। अब तक उन्होंने ज़रूरतमंदों तक 50 टन सूखा राशन पहुंचाया है, जिसमें चावल, आटा और दाल शामिल हैं। इसके साथ ही उन्होंने भारत भर के 50 शहरों में गैर-सरकारी संगठनों, अनाथालयों, वृद्धाश्रमों, सामाजिक सेवा समूहों और महिलाओं को सेनेटरी पैड भी भेजा है। विकास उन स्ट्रीट फूड विक्रेताओं को भी भोजन उपलब्ध करा रहे हैं, जिन्हें लॉकडाउन के कारण अपना कारोबार बंद रखना पड़ रहा है। स्ट्रीट फूड विक्रेताओं के बारे में विकास कहते हैं, 'इतने वर्षों से ये सभी हम लोगों को खिलाने के लिए घंटों खड़े रहे। और अब उनके पास खुद के लिए भोजन नहीं है। हम उन तक पहुंच रहे हैं।'

इरफान और यूसुफ पठान

भारतीय क्रिकेटर

पूर्व क्रिकेटर, इरफान और यूसुफ पठान ने गुजरात के वडोदरा में जरूरतमंदों के बीच लगभग 4,000 मास्क बांटे हैं। इसके अलावा, उन्होंने 5,000 किलोग्राम चावल, 5,000 किलोग्राम दाल, 700 किलोग्राम आलू और 10,000 किलोग्राम अनाज की भी व्यवस्था की है जो आस-पास के इलाकों में प्रत्येक परिवार को कम से कम एक महीने के लिए वितरित किया जाएगा।

लॉकडाउन के दौरान कोरोना हीरोज़ कहानियां https://hindi.thebetterindia.com/ से साभार ली गई हैं।

लॉकडाउन में जज्बे की तीन कहानियां

कैंसर से जूझ रहीं आंगनबाड़ी कार्यकर्ता घर-घर जाकर करती हैं सर्वे
जबलपुर में 450 किमी पैदल चलकर ड्यूटी पर पहुँचा कॉन्स्टेबल
निगम कमिश्नर एक महीने के बेटे को लेकर काम में जुटीं

ओडिशा की रमा साहू जब घर-घर सर्वे करने निकलती हैं और मुस्कुराकर सवाल पूछती हैं तो उस मुस्कान के पीछे का दर्द कोई नहीं जान पाता। कैंसर से जूझ रहीं रमा साहू जी जान से अपना काम करती जाती हैं और बीमारी उनकी हिम्मत के आगे हार जाती है। 46 साल की रमा एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता हैं जो कई सालों से गर्भाशय कैंसर से पीड़ित हैं। वह गंजाम ज़िले में खंडारा गांव में रहती हैं और इस जानलेवा बीमारी के बावजूद भी पूरी निष्ठा से अपना कार्य कर रही हैं।

कोरोना वायरस और लॉकडाउन के चलते ज़मीनी स्तर पर काम बहुत बढ़ गया है। ऐसे में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। गांव-गांव, गली-मोहल्लों में लोगों तक पहुंचना, उन्हें जागरूक करना, उन तक खाना पहुंचाना और सरकार को आवश्यक जानकारियां उपलब्ध कराने का काम उन्हीं के कंधों पर है। कैंसर जैसी बीमारी से जूझ रहीं रमा साहू भी महामारी के इस दौर में अपने ज़िम्मेदारी से पीछे नहीं हटीं और लगातार गांव में काम कर रही हैं। वह गर्भाशय कैंसर की अंतिम स्टेज पर हैं और डॉक्टरों ने भी जवाब दे दिया है। उन्हें दिनभर वयस्कों के डाइपर का इस्तेमाल करना पड़ता है। लेकिन फिर भी रमा साहू रोज आंगनबाड़ी के लिए निकल जाती हैं। उनके इलाके में 201 घर आते हैं। जहां सर्वे के लिए उन्हें पैदल ही धूप में हर एक घर में जाना पड़ता है। राशन बांटने, खाने बनवाने से लेकर लोगों को जागरुक करने का काम करना होता है। कैंसर से लड़ते हुए अपनी ड्यूटी निभाना आसान नहीं हैं। लेकिन, रमा साहू का कहना है कि यही काम उनकी तकलीफ़ को कम कर देता है। वो कहती हैं, 'ऐसे संकट के समय में हमारी ज़रूरत है तो हमें काम करना ही होगा।'

●

कोरोना के संक्रमण से निपटने के लिए केंद्र और राज्यों के अधिकारी/कर्मचारी के साथ पुलिसकर्मी भी पूरी जिम्मेदारी से ड्यूटी में जुटे हैं। संकट के दौर में लॉकडाउन के बीच ड्यूटी पर पहुंचने के लिए एक पुसिल कॉन्स्टेबल कानपुर से जबलपुर तक पैदल चला। अब एसपी समेत पूरा पुलिस महकमा उनके जज्बे को सलाम कर रहा है। दूसरी घटना आंधप्रदेश की है। जहां विशाखापट्टनम में नगर निगम कमिश्नर एक महीने के बेटे को छोड़कर ऑफिस में डटी हैं। कभी-कभी तो वे बच्चे को लेकर भी दफ्तर पहुंच जाती हैं।

यूपी के कानपुर में रहने वाले आनंद पांडे मध्यप्रदेश पुलिस में सिपाही हैं। वे इन दिनों जबलपुर शहर के ओमती थाने में तैनात हैं। वे 20 फरवरी को पत्नी के इलाज के लिए छुट्टी लेकर अपने गांव आए थे, लेकिन इसी दौरान लॉकडाउन हो गया। इस बीच, छुट्टियां खत्म हो गईं, आनंद को ड्यूटी पर जबलपुर लौटना था। ऐसे में उन्होंने हार नहीं मानी और 30 मार्च को कानपुर से जबलपुर के लिए पैदल निकल पड़े। रास्ते में जहां कहीं लिफ्ट मिलती, वे बैठ जाते और फिर उतरकर पैदल चलने लगते थे। उन्हें जबलपुर पहुंचने में 3 दिन लगे। एसपी एस. बघेल समेत स्टाफ ने आनंद के जज्बे की सराहना की।

विशाखापट्टनम की निगम कमिश्नर सृजना ने एक महीने पहले बेटे को जन्म दिया था। इस बीच, कोरोना के कारण लॉकडाउन शुरू हो गया। ऐसे में विशाखापट्टणम जैसे महानगर में निगम कमिश्नर की कितनी जरूरत होती है ये बताने की जरूरत नहीं। सृजना ने भी जिम्मेदारी समझते हुए ऑफिस जाने का फैसला कर लिया। वे इन दिनों बेटे को पति और मां के पास छोड़कर रोजाना ड्यूटी पर हाजिर हो रही हैं। कमिश्नर साफ-सफाई के कामकाज की निगरानी भी कर रही है। यही नहीं, प्रसव से कुछ दिन पहले तक भी वह ड्यूटी पर थीं। सृजना ने मीडिया से बातचीत में कहा कि नवजात को मां की जरूरत होती है, लेकिन मैंने व्यक्तिगत जरूरतों को अलग रखा है। मुख्यमंत्री के आदेश और जिला प्रशासन के सहयोग से हम कोरोना नियंत्रण के लिए प्रयास कर रहे हैं। महामारी से निपटने में मेरा भी योगदान हो, इसलिए साफ-सफाई के साथ लोगों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने में जुटे हैं।

साभार : बीबीसी और दैनिक भास्कर

सामाजिक मेल-मिलाप की मिसालें

देश में छाए कोरोना वायरस को लेकर जारी लॉकडाउन के दौरान संकट की इस घड़ी में लोग जिस तरह एक-दूसरे की मदद कर रहे हैं, उसे देखने के बाद 'ये है इंडिया...' जुबान से बरबस ही निकलता है। लॉकडाउन में एक या दो नहीं कई ऐसी घटनाएं सामने आ रही हैं, जो एकता, सामाजिक समरसता और सौहार्द की मिसालें बन गई हैं, जो लंबे समय तक याद की जाएंगी। उनके काम ने हर दिल को एक सूत्र में पिरोने का काम किया है।

कोई नहीं आया तो मुसलमान पड़ोसियों ने खुद विधि-विधान से हिंदू बुजुर्ग का किया अंतिम संस्कार

सामाजिक एकता की यह मिसाल मुंबई के बांद्रा इलाके की एक बस्ती गरीब नगर में देखने को मिली। यहां रहने वाले 68 साल के प्रेमचंद की मौत हो गई। वे अपने बेटे मोहन के साथ रहते थे। लॉकडाउन की वजह से उनका दूसरा बेटा और बाकी रिश्तेदार आ नहीं सकते थे। इसके बाद पड़ोस के मुस्लिम समुदाय के लोग जुटे और पूरे विधि-विधान से अंतिम संस्कार संपन्न करवाया। उन्होंने खुद ही अर्थी बनाई, उसे कंधा दिया और फिर श्मशान ले जाकर पार्थिव देह को पंचतत्व में विलीन भी किया।

ऐसी ही एक खबर उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर से आई थी। वहां रविशंकर नाम के एक शख्स की मौत हो गई थी। रिश्तेदारों को सूचना भेजी गई, लेकिन कुछ तो कोरोना वायरस के डर और कुछ लॉकडाउन के चलते हालात ऐसे हो गए कि कोई भी नहीं पहुंचा। उसके बाद आस-पास के कुछ मुसलमान आगे आए और अर्थी तैयार करके 'राम नाम सत्य है' कहते हुए शव को श्मशान घाट ले गए। मृतक के दाह संस्कार के बाद उन्होंने पीड़ित परिवार को हरसंभव मदद का भरोसा भी दिया।

मुसलमानों ने दिया हिंदू पड़ोसी की अर्थी को कंधा

कोरोना वायरस के संक्रमण और खासकर निजामुद्दीन में तब्लीगी जमात का मामला सामने आने के बाद देश में पनपे अविश्वास के माहौल में इस घटना पर सहजता से विश्वास होना मुश्किल है। लेकिन यह है सौ फीसदी सच। पश्चिम बंगाल के मालदा जिले के एक गांव के मुस्लिमों ने अपने हिंदू पड़ोसी की मौत के बाद लॉकडाउन के संकट के बीच न सिर्फ उसके शव को कंधा देकर 15 किमी दूर शवदाह गृह तक पहुंचाया बल्कि शव यात्रा के दौरान बंगाल में प्रचलित 'बोलो हरि, हरि बोल' और 'राम नाम सत्य है' के नारे भी लगाए।

इंसानियत की अर्थी पर दुनिया से विदा हुए कौशल प्रसाद

कानपुर शहर की गंगा जमुनी तहजीब की एक और मिसाल तब देखने को मिली जब छावनी क्षेत्र के नरोना रोड निवासी 60 वर्षीय कौशल प्रसाद का अंतिम संस्कार करने के लिए हिंदू-मुस्लिम मजहब की दीवार तोड़कर साथ आ खड़े हुए। दोनों मजहब के लोगों ने मिलकर कौशल प्रसाद की शव यात्रा निकाली और उन्हें हिंदू रीति रिवाज के मुताबिक दफनाया। ऐसा ही एक नजारा बाबूपुरवा के मुंशीपुरवा में देखने को मिला था। जहां हिंदू परिवार की वृद्धा का निधन होने के बाद मुस्लिम भाइयों ने राम नाम सत्य कहते हुए अर्थी को कंधा देकर हिंदू रीति रिवाज का पालन करते हुए शव का अंतिम संस्कार कराया था।

पुजारी जी ने मुसलमानों के कंधों पर पूरी की अंतिम यात्रा

मेरठ की कायस्थ धर्मशाला में मंदिर के पुजारी रमेश माथुर की लॉकडाउन के दौरान मौत हो गई। रमेश धर्मशाला के पुजारी थे और पत्नी के साथ वहीं रहते हैं। घर में सिर्फ एक बेटा और पत्नी मौजूद थे। ज्यादातर परिवार और रिश्तेदार सब दूसरे शहरों में हैं। पुजारी जी की मौत होने पर रोना धोना सुनकर अकील मियां पहुंचे फिर पूरा मोहल्ला इकट्ठा हो गया और सब लोग लग गए पुजारी के परिवार को संभालने में। अकील मियां, हिफ्जुर्रहमान ने मिलकर दाह संस्कार का सामान मंगवाया। महमूद अंसारी, अनवर, अल्लू, दानिश सैफी और कई अन्य लोगों ने मिलकर अर्थी तैयार करवाई। इन लोगों ने कंधा दिया और राम नाम सत्य है... के साथ उन्हें श्मशान तक ले गए. पुजारी जी की अंतिम यात्रा संपन्न हुई। पुजारी के बेटे का कहना है कि हम सब लोग परिवार जैसे हैं। सभी लोग बिना बुलाए आगे आए और हमारी मदद की।

कोरोना तमाम संकट के साथ यह सबक भी लाया है कि इंसानियत, मजहबी पागलपन से बड़ी है।
जो लोग समाज के बंटवारे का अभियान चला रहे हैं,
उनसे कह दो कि हम आपस में लड़ने और बंटने से इनकार करते हैं।

कोरोना लॉकडाउन में भूखे मजदूरों के लिए साझी रसोई

कोविड-19 लॉकडाउन के चलते भूख से बेहाल प्रवासी मजदूरों को खाना खिलाने के लिए दक्षिणी दिल्ली के कालू सराय इलाके में मस्जिद और गुरुद्वारा एक साथ आए हैं। 30 मार्च से ही कालू सराय गांव के गुरुद्वारा श्री सिंह सभा के 2 सेवादार, हरबंस सिंह और सुरेंद्र सिंह, हर रोज सुबह 9 बजे पास की मस्जिद में जा रहे हैं। जब तक वे मस्जिद पहुंचते हैं पड़ोस के ही असलम चौधरी तथा कुछ अन्य लोग गोदाम से चावल का एक बैग निकाल चुके होते हैं, सब्जियों की कटाई और मसालों को छांटना शुरू हो चुका होता है। प्याज, टमाटर, आलू, फल्ली, गाजर और हरी मटर को काटकर तैयार हो चुका रहता है और अदरक और लहसुन का बारीक पेस्ट मिक्सर में बन गया होता है। अब इन्हें तेल में डाला जाएगा। यह मैन्यू मोटे तौर पर हर दिन का है यानी अलग-अलग सब्जियों का पुलाव, हालांकि रोज-रोज के खाने में कुछ सब्जियां जरूर बदल जाती हैं। सोयाबीन के टुकड़े गाजर और फल्ली की जगह ले लेते हैं, या इसके बजाय वे दाल डालकर खिचड़ी बनाते हैं। चौधरी ने कहा, 'चावल पकाना और पैक करना आसान है और पुलाव पौष्टिक होता है।' उन्होंने कहा कि अगर दिल्ली की झुग्गियों या शहर भर में फैले मजदूरों को खाना खिलाना है तो ऐसा करना ही पड़ेगा।

24 मार्च को कोविड-19 के प्रसार का मुकाबला करने के लिए 21 दिनों के राष्ट्रव्यापी बंद की घोषणा की गई। अगले दिन रिपोर्टें आने लगीं कि दिल्ली और मुंबई जैसे शहरी केंद्रों से हजारों मजदूर पड़ोस के राज्यों में अपने घरों तक पहुंचने के लिए सैकड़ों मील की यात्रा पर निकल पड़े। ऐसे शहरों में बिना निश्चित आय वाले लोगों, जैसे दिहाड़ी मजदूर, झुग्गी-झोपड़ियों के निवासी और शारीरिक श्रम में लगे लोग- ने देखा कि धंधों, कारखानों और छोटे स्तर की विनिर्माण इकाइयों के बंद हो जाने से उनकी आय का जरिया बंद हो गया है। समाचारों की रिपोर्ट के अनुसार इन शहरों में बेरोजगारी और भुखमरी का संकट पैदा हो गया है। दिल्ली सरकार ने तब से कुछ कदमों की घोषणा की है, जैसे कि 4 लाख लोगों को खिलाने के लिए 500 भूख राहत केंद्र स्थापित करना और भूख हेल्पलाइन शुरू करना। राष्ट्रीय राजधानी के कई हिस्सों में, नागरिक-समाज समूह, व्यक्ति और धार्मिक संस्थान जैसे मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे हजारों मजदूरों को खिलाने की जिम्मेदारी उठाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ये ऐसे प्रयास हैं जिन्हें उस पैमाने की कमी और पहुंच का सामना करना पड़ रहा है जो सरकार प्रदान कर सकती है।

जब मैं 31 मार्च को मस्जिद में चौधरी से मिला तो उन्होंने कहा, 'स्थिति बहुत खराब है। मुझे दक्षिण दिल्ली के महरौली, हौज खास गांव, बेगमपुर से भोजन के लिए बहुत हताशा भरे फोन आ रहे हैं।' मोदी की लॉकडाउन की घोषणा के दो दिन बाद 26 मार्च से चौधरी की रसोई शुरू हुई। चौधरी एक मेस चलाते हैं और कैटरिंग का व्यवसाय करते हैं। वे ज्यादा मात्रा में खाना पकाना जानते हैं। शुरू में उन्होंने प्रवासियों के लिए खाना पकाने के लिए कुछ लोगों को काम पर रखा था लेकिन वे उनके द्वारा बनाए गए भोजन से खुश नहीं थे। पास के गुरुद्वारे में लंगर की बात करते हुए उन्होंने कहा, 'लंगर बंद है, इसलिए मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं उनके बर्तन उधार ले सकता हूं। वे सहमत हो गए।' चौधरी ने कहा कि गुरुद्वारे ने उन्हें दो बड़े बर्तन भेजे हैं - एक बड़ा भगोना, जिसमें 25 किलोग्राम चावल बन सकते हैं और एक छोटा भगोना जिसमें 10 किलोग्राम तक चावल बन सकता है। गुरुद्वारे ने दो रसोइयों को भी भेजा, जो खाना बनाने में चौधरी की मदद कर सकते थे। रसोइया, सुरेंद्र सिंह के साथ आए लंगर सुपरवाइजर हरबंस सिंह ने कहा, 'हम यहां जो कर रहे हैं, वह लंगर में हम जो करते हैं उससे बहुत अलग नहीं है। यह ईश्वर की कृपा है और जब तक लॉकडाउन जारी है हम सेवा करेंगे।'

चौधरी पहले दिन बेसमेंट में स्थित अपनी मेस में खाना बना रहे थे और गुरुद्वारा के कर्मचारी भी उनके साथ हो गए। चूंकि बेसमेंट में अंधेरा और घुटन थी इसलिए अगले दिन ही उन्होंने रसोई को अब खाली पड़ी मस्जिद में स्थानांतरित कर दिया। जिस दिन मैंने वहां का दौरा किया तो 10 बजे तक 10 किलोग्राम आलू, 7 किलोग्राम टमाटर और प्याज और ढाई-ढाई किलोग्राम गाजर, बीन्स और मटर पकने के लिए तैयार थे। चावल को पानी में भिगो दिया गया था और देगजी तैयार की जा रही थी। सुरेंद्र सिंह, जिन्हें कालू सराय में बिल्ला के नाम से जाना जाता है, खाना बना रहे थे। बिल्ला एक स्कूल में काम करते हैं और अपना बाकी समय गुरुद्वारे के लंगर में बिताते हैं। चूंकि स्कूल और गुरुद्वारा दोनों बंद हो गए थे तो वे अपनी सेवाएं चौधरी की रसोई में दे रहे थे। वे लगातार नौजवानों को निर्देश देते थे और उन्हें बताते थे कि सब्जियों को कैसे काटें और साफ करें, इस दौरान हरबंस एक कुर्सी पर बैठकर पूरी प्रक्रिया का पर्यवेक्षण करते थे। हर 15 मिनट में, उनमें से एक व्यक्ति पास से ही हैंड सैनिटाइजर की एक नीली बोतल उठा लाता और इसे बाकी लोगों को भी देता। कमरे में सभी लोग या तो मास्क पहने हुए थे या उनके चेहरे पर रूमाल बंधा हुआ था।

चौधरी ने कहा, ''कोविड-19 एक ऐसी बीमारी है, जिससे अब राशन कार्ड धारक पीड़ित हैं। मुझे कल गाजियाबाद के इंदिरापुरम से फोन आया और हमने खाने के कुछ पैकेट देने वहां गए।'' चौधरी और उनकी टीम के पास सरकार द्वारा जारी किए गए तीन लॉकडाउन पास हैं। यह पास उन्हें पुलिस द्वारा रोड ब्लॉक की स्थिति में जाने की अनुमति देता है। वे खाना पहुंचाने के लिए एक महंगे स्पोर्ट्स यूटिलिटी व्हीकल का भी इस्तेमाल करते हैं। 'क्या आपने कभी पुलिस को महंगे वाहनों को रोकते या ड्राइवरों को परेशान करते देखा है?' चौधरी ने पूछा। 'बस गरीबों को ही खामियाजा भुगतना होता है।' उन्होंने कहा कि वाहन का बूट खाने के पैकेट और सूखे राशन से भरे बैग रखने के लिए काफी बड़ा है।

29 मार्च को, चौधरी और उनकी टीम जब खाना देने के लिए सराय काले खां बस टर्मिनल जा रहे थे तो उन्हें बच्चों सहित सात लोगों का एक परिवार मिला। उन्होंने रोका और पूछा कि वे कहाँ जा रहे हैं। चौधरी ने कहा, 'वे दिहाड़ी मजदूर थे जो दिल्ली से उत्तर प्रदेश के कासगंज जा रहे थे, क्योंकि उनके ठेकेदार ने उन्हें बिना भुगतान किए छोड़ दिया था। उनके पास बच्चों के लिए दूध खरीदने के लिए भी पैसे नहीं थे।' टीम ने उन्हें कुछ खाने को दिया।

भोजन तैयार करने में तीन घंटे लगते हैं, बिल्ला ने कहा। दोपहर 1 बजे तक, खाना पैक होने के लिए तैयार था। टीम ने चम्मचों से भरकर खाना प्लास्टिक की थैलियों में डालना शुरू किया। चौधरी ने कहा, 'मैं उन्हें कम से कम 400-500 ग्राम पैक करने का निर्देश देता हूं। 600 और 700 के बीच भोजन के पैकेट तैयार किए जाते हैं और दोपहर 2 बजे तक वितरण के लिए तैयार होते हैं, तब तक टीम भी तैयार हो जाती है। वे पहले शाहपुर जाट जाते हैं, जहाँ बहुत से बंगाली और बिहारी प्रवासी रंगाई और सिलाई के उद्योगों में काम करते हैं। वे वहां भोजन के लगभग 100 पैकेट वितरित करते हैं। उनका अगला पड़ाव हौज खास गांव होता है।' चौधरी ने कहा, 'कैफे और रेस्तरां से दूर, एक बिहारी बस्ती है। हम वहां 100 अन्य पैकेट वितरित करते हैं।' महरौली में लगभग 150 पैकेट इस्लाम कॉलोनी में ले जाए जाते हैं और 150 पैकेट बेगमपुर और कालू सराय में भूखे लोगों के बीच बांटे जाते हैं। भोजन के अलावा, टीम के पास आटा, चावल, दाल, साबुन, हेयर ऑयल, प्याज, टमाटर और आलू से युक्त सूखे राशन के 'किट' भी हैं।

आम तौर पर शाम 5 बजे टीम भोजन वितरित करके वापस लौट आती है फिर बर्तन धोए जाते हैं और अगले दिन के लिए सब्जियां और चावल खरीदा जाता है। रात के भोजन की व्यवस्था कर पाना संभव नहीं है, इसलिए वे यह सुनिश्चित करने की कोशिश करते हैं कि उनके द्वारा वितरित प्रत्येक लंच पैकेट में इतनी कैलोरी मात्रा में भोजन हो कि लोगों का अगले दिन दोपहर के भोजन तक काम चल जाए। चौधरी ने कहा, 'हम अपनी क्षमता के अनुसार सब कुछ कर रहे हैं।' सब्जी की कीमतें बढ़ने के बावजूद, उनकी मेस में सब्जी देने वाला उन्हें अच्छी कीमत पर सब्जियां देता है। चौधरी बताते हैं, 'हमने अपना पैसा लगा दिया है और जो लोग मदद करना चाहते हैं वे भी दे सकते हैं। बाद में हमने ओखला और अन्य स्थानों के लोगों से चावल और खाना पकाने का तेल लेना शुरू किया। चौधरी ने आगे कहा, 'लॉकडाउन ने बहुत दहशत पैदा की है। सरकार को इसे थोड़ा बेहतर करना चाहिए था।'

साभार : https://hindi.caravanmagazine.in/

भरतपुर निवासी साहब सिंह की साइकिल चोरी हो गई। साहब सिंह थाने में रिपोर्ट लिखाने की योजना बना रहे थे, लेकिन जहां पर उनकी साइकिल खड़ी रहती थी, वहीं पर एक छोटी सी चिट्ठी पड़ी मिली। इसे साइकिल चुराने वाले ने लिखी थी। लिखा था कि-

''नमस्ते जी, मैं आपकी साइकिल लेकर जा रहा हूं, हो सके तो मुझे माफ कर देना जी क्योंकि मेरे पास कोई साधन नहीं है। मेरा एक बच्चा है, उसके लिए मुझे ऐसा करना पड़ा, क्योंकि वो दिव्यांग है। चल नहीं सकता, हमें बरेली तक जाना है।

आपका कसूरवार : एक यात्री मजदूर एवं मजबूर
मोहम्मद इकबाल खान (बरेली)

चिट्ठी से जाहिर है कि इकबाल ने मजबूरी में चोरी तो की, लेकिन इसकी सूचना साइकिल मालिक को दे दी। बैंक लूटता तो बेटे के साथ लंदन में सेटल हो जाता। लेकिन आम आदमी है। ईमान ने गवाही नहीं दी होगी, घर जाने की मजबूरी और बेटा विकलांग। उसने माफी मांग ली। चिट्ठी पढ़कर साधारण किसान साहब सिंह भी पिघल गए, रिपोर्ट लिखाने नहीं गए। लेकिन साहब सिंह की उदारता भी इस बात की गारंटी कहां है कि इकबाल और उसका विकलांग बेटा घर पहुंचेंगे ही.

कोरोना लॉकडाउन में भूखों को खाना खिलाने की ख़ातिर बेच दी ज़मीन

''अगर हम धर्म देखें और लोगों को खाना दें तो ईश्वर हमारी ओर देखना बंद कर देगा।''

यह कहना है मुज़म्मिल और तजम्मुल दो भाइयों का। कर्नाटक राज्य के कोलार में रहने वाले इन दो भाइयों ने लॉकडाउन में गरीब लोगों को खाना खिलाने के लिए 25 लाख में अपनी संपत्ति बेच दी।

37 साल के मुज़म्मिल ने मीडिया को बताया, ''हमें लगा कि बहुत से लोग हैं जो गरीब हैं, जिनके पास खाने के लिए कुछ नहीं है। एक वक्त था जब हम खुद भी बहुत गरीब थे। किसी ने हमारे प्रति भेदभाव नहीं रखा, अलबत्ता मदद ही की।''

जब इन दोनों भाइयों को एहसास हुआ कि लॉकडाउन के कारण बहुत से गरीब लोगों के लिए परिस्थितियां मुश्किल हो गई हैं और उन्हें परेशानी से जूझना पड़ रहा है तो इन दोनों भाइयों अपनी ज़मीन के टुकड़े को बेचने का फैसला किया। मुज़म्मिल बताते हैं, ''हमने ज़मीन का वो टुकड़ा अपने एक दोस्त को बेच दिया। वो बड़ा भला मानस था और उसने हमें उस ज़मीन के बदले 25 लाख रुपये दिये। इस दौरान और भी बहुत से दोस्तों ने अपनी-अपनी ओर से सहयोग किया। किसी ने 50 हज़ार रुपये दिए तो किसी ने एक लाख रुपये। वास्तव में यह कहना ठीक नहीं है कि अभी तक कितना खर्च किया जा चुका है। अगर ईश्वर को पता है तो काफी है।''

बिना किसी भेदभाव के मदद

वो बताते हैं, ''हमने गरीबों को खाना देना शुरू किया और जिस किसी भी जगह पर हमें पता चला कि कोई किल्लत से जूझ रहा है वहां हमने उसे 10किलो चावल, 2 किलो आटा, एक किलो दाल, एक किलो चीनी, 100-100 ग्राम करके धनिया, लाल मिर्च, हल्दी, नमक और साबुन इत्यादि चीज़ें मुहैया करायीं।''

रमज़ान को शुरू हुए दो दिन हुए हैं और इन दो दिनों में ढाई हज़ार से तीन हज़ार लोगों को खाने के पैकेट दिए जा रहे हैं और ज़रूरत की चीज़ें भी।

इन दोनों भाइयों ने बहुत छोटे पर ही अपने पिता को खो दिया था। जब पिता की मौत हुई तो बड़ा भाई चार साल का और छोटा भाई तीन साल का था। लेकिन दुख यहीं ख़त्म नहीं हुआ। 40 दिन ही बीते थे कि मां का भी निधन हो गया। दोनों बच्चों को उनकी दादी ने बड़ा किया। एक स्थानीय मुअज्ज़िन ने उन्हें एक मस्जिद में रहने के लिए जगह दी। मस्जिद के पास ही एक मंडी थी,जहां दोनों भाइयों ने काम करना शुरू किया।

मुज़म्मिल बताते हैं, ''हम दोनों बहुत अधिक पढ़े-लिखे नहीं हैं। साल 1995-96 में हम हर रोज़ 15 से 18 रुपये रोज़ाना कमाया करते थे। कुछ सालों बाद मेरे भाई ने मंडी शुरू करने के बारे में सोचा।''

जल्द ही दोनों भाइयों ने मंडियों की शुरुआत की। अब वे आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु से भी केले लाते हैं और डीलरों के साथ थोक व्यापार करते हैं।

मुज़म्मिल कहते हैं, ''हमारी दादी हमें बताया करती थीं कि हमारी परवरिश के लिए बहुत से लोगों ने मदद की थी। किसी ने पांच रुपये की मदद की तो किसी ने दस रुपये की। वो कहा करती थीं कि हमें बिना किसी भेदभाव के लोगों की मदद करनी चाहिए।''

मुज़म्मिल कहते हैं, ''धर्म सिर्फ इस धरती पर ही है। ईश्वर के पास नहीं। वो जो हम सब पर नज़र रखता है वो सिर्फ़ हमारी भक्ति को देखता है बाकी और कुछ नहीं।''

साभार : bbc.co.uk/hindi

संकट के दौर में आशा की किरण

जब लगभग पूरी दुनिया कोरोना वायरस के शिकंजे से निकलने के लिए छटपटा रही है, ऐसे दौर में कला एक बानगी है उस ताकत की जिससे आशा की किरण नज़र आती है। कला हमें ध्यान दिलाती है कि मुश्किल और बेबस दौर में भी सृजनात्मकता खत्म नहीं होती। वो हमें ये भूलने नहीं देती कि समय बदलेगा और अपने साथ सब कुछ बहा ले जाएगा।

दुकानें बंद हैं, सड़कें वीरान हैं,
दूसरे शहर में पड़ी माओं की रातें
करती हैं सांय-सांय,
कोई घर नहीं आता,
दोस्तों को भींच लेने को तरसती हैं बाजुएं,
बूढ़ी दादी कहती हैं
मुल्क को किसी की नज़र लग गई,
डर लगता है न,
पर वो बता रहे हैं
कि सफेद कोट पहनने वाले कुछ पढ़ाकुओं ने
प्रयोगशालाओं में जान दे रखी है,
वो बता रहे हैं कि
महज़ कुछ हफ्तों की क़ैद के बाद,
कई दिशाओं से आ रही है राहत की महक।'

पेशे से पत्रकार कुलदीप मिश्र की इस कविता ने पिछले दिनों न जाने कितने लोगों की फेसबुक टाइमलाइन पर उम्मीद और विश्वास के बीज बोये। फिर रेडियो के लिए लिखी और पढ़ी गई इस कविता को कथक नृत्यांगना मृणालिनी ने एक नृत्य के रुप में प्रस्तुत किया और इसके शब्दों को जैसे पंख लग गए। कुलदीप कहते हैं, 'इस घबराहट से भरे दौर में मैं लोगों को अपनी कविता के ज़रिए उम्मीद से भर देना चाहता था और ये इस दौर की ज़रूरत ही है जिसने इस कविता को इतना वायरल कर दिया। पिछले कुछ दिनों में मुझे बहुत से लोगों के फोन आए कि कविता सुनकर उन्होंने बहुत बेहतर महसूस किया। उन्हें गलियों में दौड़ते बच्चों और बैठक लगाए बुज़ुर्गों के दृश्य इस कविता में दिखाई दिए और उन्हें विश्वास है कि वो दिन फिर से लौटेंगे।'

शब्द और कविताएं कला के इस हस्तक्षेप में भले ही आगे हों लेकिन कोशिशें उन तक सीमित नहीं। पिछले कुछ हफ्तों में कला और कला-क्षेत्र से जुड़ी कई ऐसी पहल सामने आई हैं जो अपने-अपने ढंग से कोविड के खिलाफ लड़ाई में आम लोगों की भागीदार बन रही हैं।

राजस्थान, भीलवाड़ा के फड़ चित्रकार विजय जोशी ने लोक-देवों और उनकी कलाकृतियों के ज़रिए कोरोना वायरस के संक्रमण, बचाव और सरकारी प्रयासों पर एक फड़ चित्र तैयार किया। कुछ ऐसी ही कोशिश कुमाऊं और राजस्थान के लोक गायकों ने भी की है। राजस्थानी लोक गायक लक्ष्मण लाल गुर्जर और थावरचंद खांडेरा ने जहां लोगों से सरकार की बात मानने और 14 अप्रैल तक घरों में रहने की अपील की, वहीं कुमाऊंनी लोक-गायक भुपेंद्र बसेड़ा ने 'नमस्ते' के ज़रिए लोगों को सोशल-डिस्टेंसिंग का पाठ पढ़ाया।

छोटी या बड़ी ये कोशिशें भारत के हर कोने में हो रही हैं। मोहिनी अट्टम में पारंगत प्रसिद्ध नृत्यांगना मेथिल देविका ने कोरोना से उपजी त्रासदी पर एक प्रस्तुती की। डेढ़ लाख से ज्यादा लोगों तक पहुंच चुकी इस वीडियो का मकसद केवल वायरस संबंधी जागरुकता नहीं। मूल रुप से देविका ने अपनी कला का इस्तेमाल प्रकृति और मनुष्य के बीच तालमेल को समझाने के लिए किया है। वो कहती हैं, 'इंसान पर आने वाली किसी भी विपत्ति के तीन स्रोत हैं- प्रकृति, कोई अन्य व्यक्ति और स्वयं यानि हम खुद। इस वायरस को अगर हम प्रकृति से जनित मानें तो भी इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि इसके लिए बहुत हद तक इंसान खुद भी ज़िम्मेदार है। अपनी इस परफॉर्मेंस के ज़रिए मैं ये कहना चाहती हूं कि हमें निडर होकर इस विपत्ति का सामना करना है लेकिन अपने अस्तित्व की सीमाओं का आदर करते हुए।'

नए ज़माने के मशहूर दास्तानगो हिमांशु बाजपेयी इन दिनों अपने फेसबुक पन्ने पर शायरों, लेखकों और संगीतकारों को लेकर लगातार वर्चुअल बैठकें कर रहे हैं। वो कहते हैं, 'इस तरह के वक्त में इंसान आमतौर पर अपने करीब जाता है। वो अपने आसपास को नए नज़रिए से देखता है, इसलिए मेरा मकसद है कि इस दौरान जब लोगों के पास वक्त है तो उनके साथ उन शायरों और कलाकारों पर बात की जाए जिन्हें या तो वो जानते नहीं या भूल गए हैं। वो लोग जो पॉपुलर नैरेटिव से बाहर हैं।'

एक कलाकार के तौर पर वो इस बात को भी समझते हैं कि ये खाली वक्त और ये बैठकें उन लोगों के लिए शायद कोई मानी न रखें जो दो वक्त की रोटी, दवाओं या ज़रूरी सामान के लिए जूझ रहे हों। इन लोगों की सुध लेना भी कला की ज़िम्मेदारी है।

साभार : hindi.theprint.in

संकट के दौर में खुशियां बिखेरते लोग

कोरोना वायरस को लेकर कई देशों में लॉकडाउन की स्थिति के दौरान लोग कई तरह की समस्याओं से रूबरू हुए, ऐसी स्थिति में लोगों की मदद करने और चेहरे पर मुस्कान लाने के लिए कुछ लोगों ने अनोखे काम किए। आपके लिए कुछ ऐसी ही चुनिंदा कहानियां पेश हैं, जिन्होंने मुश्किल समय में भी लोगों को सुकून का अहसास कराया।

महामारी के दौरान खुशबू बिखेरते फूल

कोरोना वायरस से फैली महामारी की वजह से कई शादियां रद्द हो रही हैं। फूलों के कारोबार पर भी इसका असर पड़ा है। बड़ी मात्रा में फूल बर्बाद हो रहे हैं। लेकिन दक्षिण अफ्रीका के पार्ल शहर में फूलों का कारोबार करने वाले एक समूह ने इस बुरे वक्त को एक नए अवसर में तब्दील कर दिया है। एडेन फार्म हाउस नाम के इस समूह ने एक वृद्धाश्रम को बाहर से इन फूलों से सजा दिया है। इस वृद्धाश्रम के लोग मार्च से ही लॉकडाउन में रह रहे हैं लेकिन फार्म ने अपने फेसबुक पेज पर लिखा है कि उन्हें खाली पड़े फुटपाथ पर आकर इन फूलों को सूंघने की इजाज़त है। वहां से गुजरने वाले लोग भी इस पहल की तारीफ़ कर रहे हैं। यह लोगों को चेहरे पर खुशी ला रहा है।

मकान मालिक ने किराया माफ़ किया

कीनिया के एक मकान मालिक ने अपने 34 किरायेदारों का मार्च और अप्रैल का किराया माफ़ कर दिया है। माइकल मुनेने नाम के इस शख़्स के पास 28 अपार्टमेंट्स हैं जिसके लिए वो प्रति महीने 3000 कीनियाई शिलिंग भाड़े के तौर पर लेते हैं। उनके पास छह दुकानें भी हैं जिसके लिए वो 5000 कीनियाई शिलिंग भाड़े के तौर पर लेते हैं। अगर वो किराया नहीं लेते हैं तो उन्हें 2000 डॉलर से ज्यादा का नुकसान होगा। माइकल भी कभी किरायेदार रहे हैं और किराया नहीं देने की वजह से मकान मालिक ने उन्हें घर से निकाल दिया था। वो कहते हैं, 'वो एक अर्से से मेरे किरायेदार रहे हैं। उनके दिए हुए पैसों से मेरे बहुत से काम होते हैं। यह उनके साथ खड़े होने का और एक-दूसरे की मदद करने का समय है।' एक स्थानीय अखबार ने उन्हें 'बड़े दिलवाला मकान मालिक' कहते हुए तारीफ़ की है।

लोगों का ऑनलाइन मनोरंजन करती बेली डांसर

ट्यूनीशियाई बेली डांसर नेर्मिन स्फार लॉकडाउन में रह रहे लोगों का ऑनलाइन डांस कर मनोरंजन करती हैं ताकि वे आसानी से लॉकडाउन में वक्त गुज़ार पाएँ। वो अपने घर से हर रात लाइव डांस शो करती हैं और लाखों लोग फेसबुक पर उन्हें देखते हैं। ट्यूनीशिया में लॉकडाउन शुरू होने से ठीक पहले उन्होंने शुरू कर दिया था। उन्होंने लोगों को लॉकडाउन के दौरान घरों में रहने के लिए प्रोत्साहित करते हुए सोशल मीडिया पर संदेश भेजा, 'घरों में रहिए आप, मैं आपके लिए डांस करूंगी।' लगता है उनका यह प्रयोग काफ़ी सफल रहा है क्योंकि पिछले हफ्ते बीस लाख लोगों ने उनके वीडियो को देखा है।

पॉप स्टार ने अपना घर बनाया क्वारंटाइन सेंटर

इथियोपियाई पॉप स्टार हैमेलमाल अबाटे ने अपना एक घर क्वारंटाइन में रहने वाले लोगों को दान में दे दिया है। पिछले महीने इथियोपिया की सरकार ने बाहर से आने वाले लोगों को अपने खर्च पर होटल में 14 दिनों का क्वारंटाइन करने का आदेश दिया था। बीबीसी इथियोपिया के रिपोर्टर कैल्किन इबेलताल कहती हैं कि सरकार का यह आदेश उन विदेशियों के लिए तो ठीक है, जिनके पास पैसे हैं। हमारे अपने देश के लोग भी इसमें शामिल हैं जिन्हें क्वारंटाइन की ज़रूरत है। इनमें से कुछ तो होटल में रहने का ख़र्च उठा लेंगे। लेकिन जो उठा नहीं सकते हैं, उन्हें इसकी ज़रूरत है। राजधानी अदीस अबाबा में अपने घर के पास ही उन्होंने यह घर लोगों के लिए दिया है। इथियोपिया में कई लोग क्वारंटाइन के ज़रूरतमंदों के लिए कम पड़ती जगह से चिंतित हो अपना घर क्वारंटाइन के लिए दे रहे हैं।

फुटबॉलर ने अपने फैन्स को खाने के लिए पैसे दिए

नाइजीरिया के फुटबॉलर गोलकीपर शिनूडु अनोजी ने अपने चार फैन्स को आर्थिक मदद की है ताकि वे खाना-पीना कर सकें। उन्होंने अपने फैन्स को 5000 नाइरा दिया है। बीबीसी संवाददाता डुका ओरजिनो कहते हैं कि यह मदद भले ही बड़ी न लग रही हो लेकिन अगर आप नाइजीरिया के ज्यादातर खिलाड़ियों की सालाना आय जानेंगे तो यह आपको एक बड़ी मदद लगेगी। नाइजीरिया के अखबार वैनगार्ड ने अनोजी की तारीफ की है। अनोजी पिछले दस मैचों में फुटबॉल टीम का हिस्सा भी नहीं रहे हैं।

नफरत और वायरस के युग में ज़ेबा और दुर्गा की कहानी

ज़ेबा और दुर्गा की कहानी उम्मीद जगाती है कि आम भारतीय मुश्किल से मुश्किल हालात में भी इंसानियत की मशाल को रोशन रखने से पीछे नहीं हटता।

31 मार्च को, जब दुर्गा मुंबई की एक जेल से जमानत पर रिहा हुई, तो उसके जेलर बेहद असमंजस में थे। पूरे देश में लॉकडाउन था। यातायात के सभी साधन बंद थे। दुर्गा के पास महाराष्ट्र के पालघर स्थित अपने घर में पहुँचने के लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं था।

जेलर साहब को एक तरकीब सूझी। उन्होंने जेल की उन महिला कैदियों से बात की जो अगले दिन रिहा होने वाली थीं। उन सब से उन्होंने पूछा कि उनमें से कोई कैदी दो बच्चों की माँ दुर्गा को अपने साथ अपने घर ले जा सकती है और क्या लॉकडाउन खुलने तक अपने घर में रख सकती है।

एक महिला तैयार हुई।

नाम ज़ेबा। उम्र 22 साल। मज़हब मुस्लिम।

दोनों महिलायें एक ही जेल में बंद थीं लेकिन अब से पहले वे एक-दूसरे को नहीं जानती थीं। ज़ेबा नाम की यह बहादुर लड़की, जब दुर्गा को मुंबई की सबसे गरीब झुग्गी-बस्तियों में से एक, देवनार स्थित अपनी खोली में लेकर गई तो उसका परिवार अचरज में पड़ गया। सारी कहानी सुनने के बाद सभी ने दुर्गा को गले लगा लिया।

ज़ेबा की बड़ी बहन नादिया बताती हैं कि एक बारगी तो हम ज़ेबा के साथ आई अजनबी औरत को देखकर चौंक गए। उसका क्या मज़हब है, इससे हमारा कोई लेना-देना नहीं है।

हिन्दू-मुसलमान के नाम पर आज नफरत का माहौल है पर हमारी परवरिश उस तरीके से नहीं हुई।

ज़ेबा के परिवार में 13 लोग हैं। उसके बूढ़े अम्मी और अब्बू के अलावा नादिया के शौहर और उनके पांच बच्चे भी दस बाई दस फुट के एक कमरे के मकान में रहते हैं और मुंबई में रहने वाले लाखों लोगों की तरह सार्वजनिक शौचालय का इस्तेमाल करते हैं। ज़ेबा के अतिरिक्त घर के सभी वयस्क छोटा-मोटा काम धंधा करते हैं। नादिया आसपास की कॉलोनियों के घरों में साफ़ -सफाई का काम करती है।

भारत में कोरोना वायरस से संक्रमित लोगों की संख्या हर रोज़ बढ़ रही है। भारत में संक्रमण के शिकार कुल लोगों में से अकेले महाराष्ट्र में 31 प्रतिशत हैं। परन्तु दक्षिणपंथी सोशल मीडिया सेनानियों ने महामारी के दौर में भी इस्लाम के प्रति नफरत फैलाने के रास्ते तलाश कर ही लिए। कभी नागरिकता क़ानून के विरुद्ध होने वाले आंदोलनों के बहाने तो कभी तबलीगी जमात के नाम पर, अहमदाबाद के एक अस्पताल में हिन्दू और मुस्लिम मरीजों के अलग-अलग वार्ड बनाने का समाचार हो अथवा पालघर में साधुओं की हत्या का मामला या फिर जेल में बंद जामिया की छात्रा सफूरा जरगर के चरित्र हनन के उद्देश्य से सोशल मीडिया पर दुष्प्रचार हो : नफरत के सौदागरों ने नफरत की बारिश करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी।

इस सारे माहौल में ज़ेबा और दुर्गा की कहानी उम्मीद जगाती है कि आम भारतीय मुश्किल से मुश्किल हालात में भी इंसानियत की मशाल को रोशन रखने से पीछे नहीं हटता।

ज़ेबा के घर में शुरूआती कुछ दिनों में, रो-रोकर दुर्गा का बुरा हाल था। वह किसी भी तरह से अपने दोनों नन्हे बच्चों के पास पहुंचना चाहती थी, जिनसे वह दिसम्बर 2019 में जेल जाने के बाद से बात तक नहीं कर पाई थी।

वो कहती हैं कि जैसे ही मैं नादिया दीदी के बच्चों को देखती हूँ तो मेरा दिल अपने बच्चों से मिलने के लिए तड़प उठता है। ज़ेबा के परिवार से मिली मुहब्बत और तसल्ली से पालघर के रेलवे स्टेशन पर सोने वाली बेघर दुर्गा अब पहले से काफी बेहतर है।

हफ्फपोस्ट के रिपोर्टर वलय सिंह को दुर्गा ने फोन पर बताया,'ज़ेबा और उसका पूरा परिवार मेरी देखभाल परिवार के किसी सदस्य की तरह कर रहा है। मैं उनकी लगती ही कौन हूँ? अचानक एक व्यक्ति उनके घर आ गया और इस गरीब परिवार को तीनों जून उसे रोटी खिलानी पड़ रही है। लेकिन उन्होंने मुझे एक पल के लिए भी पराया नहीं समझा। सब मेरी हालत समझ रहे हैं और मेरा पूरा ख्याल रखते हैं।'

दुर्गा किसी अपराध के लिए पहली बार जेल गई थी। वह एक दलित परिवार से है और पीछे दो बच्चे हैं। कुछ साल पहले जब उसके पति की मौत हो गई तो हालात से लड़ने की कोशिशों के बीच उसे शराब की लत लग गई। उसके ससुराल वालों ने उसे घर से निकाल

दिया और उसके बच्चों को भी उससे छीन लिया।

दिसंबर की एक सर्द शाम को जब दुर्गा रेल की पटरियों के किनारे टहल रही थी तो पालघर रेलवे पुलिस ने उसे किसी छोटी-मोटी चोरी के आरोप में गिरफ्तार कर लिया।

'मेरी ही गलती थी। जब मेरे पति की मौत के बाद मेरे ससुराल वालों ने मेरे बच्चों को मुझसे छीन लिया तो मैं एकदम टूट गई। मैंने घर छोड़ दिया और उसके बाद मुझे शराब की लत लग गई और मैं बुरी संगत में पड़ गई।'

उसे अपने ससुराल वालों से कोई विद्वेष नहीं हैं पर उसे अफ़सोस है कि उसके पास उनमें से किसी का फोन नंबर नहीं है। पांच महीनों से अपने बच्चों को देखना तो दूर उनकी आवाज़ तक सुनने को तरस गई दुर्गा की आवाज़ फोन पर रुंध जाती है। ज़ेबा और दुर्गा की कहानी दुनिया के सामने लाने वाले पत्रकार वलय ने जब-जब ज़ेबा से बात करने की कोशिश की तो या तो वह घर से बाहर थी अथवा उसने बात करने से इन्कार कर दिया। ज़ेबा अपने आसपास की बस्ती में काफी लोकप्रिय रही है पर उसे भी नशे की लत ने बिगाड़ दिया।

ज़ेबा की बहन नादिया बताती हैं कि ज़ेबा उनके परिवार की सबसे हिम्मतवर सदस्य है। वह अपने मन की बात कहने और करने से पीछे नहीं हटती। उसके जैसी लड़कियों को हमारा समाज पसंद भी नहीं करता।

ज़ेबा एक मुस्लिम नवयुवती और दुर्गा एक दलित विधवा : दोनों ही औरतें कैदियों की उस श्रेणी से सम्बंधित हैं जो भारत की न्यायिक-व्यवस्था में सबसे अधिक उपेक्षित हैं। 23 मार्च को सर्वोच्च-न्यायालय ने राज्य सरकारों को निर्देश दिया था कि ऐसे कैदियों को जमानत पर रिहा करने पर विचार किया जाए जिनके अपराध में सजा की अवधि सात वर्ष से कम है। इसके पीछे मकसद यह था कि कैदियों की भीड़-भरी जेलों में कोरोना वायरस के संक्रमण को फैलने से रोका जा सके।

भारत की लगभग सभी 1300 से ज्यादा जेलों में कैदियों की संख्या क्षमता से अधिक है। इन कैदियों में से 68 फीसदी कैदियों के मुकदमे विचाराधीन है। ऐसे कैदियों को दसियों साल जेल में रहकर मुकदमे की कार्रवाई खत्म होने का इंतज़ार करना पड़ता है। महाराष्ट्र में साढ़े तीन हज़ार विचाराधीन कैदियों को जमानत पर रिहा किया गया है। पर यह संख्या राज्य की जेलों में बंद विचाराधीन कैदियों की संख्या का मात्र दस फीसदी है।

कॉमनवेल्थ ह्युमन राइट्स इनिशिएटिव की वरिष्ठ सलाहकार माजा दारूवाला बताती हैं , 'हमें उम्मीद थी कि इस निर्देश के पश्चात राज्य सरकारें ऐसे कैदियों को रिहा करके जेलों में भीड़ कम करने की दिशा में ठोस कदम उठाएंगी पर सरकारों ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों का उचित तरीके से पालन नहीं किया है। न्यायालय ने सात साल की अधिकतम सजा वाले कैदियों को रिहा करने की बात मात्र एक उदाहरण के तौर पर कही थी मगर सरकारों ने इसे पात्रता का मानदंड बना लिया।'

टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान (अपराध-विज्ञान एवं न्याय केंद्र) द्वारा संचालित 'प्रयास', जिसके माध्यम से विचाराधीन कैदियों के पुनर्वास में सहयोग का काम किया जाता है, के सदस्यों ने कई बार प्रयास किया कि किसी तरह दुर्गा को पालघर स्थित उसके घर पहुंचा दिया जाए; पर वे सफल नहीं हो सके। एक तो पश्चिमी महाराष्ट्र में सख्ती से लॉकडाउन लागू है वहीं बच्चा-चोरी के संदेह में दो साधुओं और उनके ड्राइवर की भीड़ द्वारा निर्मम हत्या के कारण पालघर और आस-पास के इलाकों में माहौल अत्यंत तनावपूर्ण हो गया था।

'प्रयास' के कार्यकर्ता सुधाकर मारुपुरी ने बताया, 'हमारे पास दुर्गा को उसके घर पहुंचाने के लिए पुलिस का अनुमति-पत्र भी है लेकिन लॉकडाउन के कारण हमें कुछ दिन और इंतज़ार करना पड़ेगा। लेकिन इस बीच हम दुर्गा के लिए कुछ पैसा इकट्ठा कर रहे हैं ताकि वह घर लौटने के बाद अपनी और अपने बच्चों की देखभाल कर सके।'

रिहा किये गये विचाराधीन कैदियों की मदद और उन्हें घर पहुंचाने के लिए सरकारी निर्देशों के अभाव में दुर्गा के पास हालात सामान्य होने तक इंतज़ार करने के अलावा कोई और रास्ता नहीं है। पर लॉकडाउन खत्म होने और घर पहुँचने के बाद भी दुर्गा की मुश्किलें कम होने वाली नहीं हैं क्योंकि न तो उसके पास घर है और न ही आमदनी का कोई जरिया जिससे वह अपनी और अपने बच्चों की देखभाल कर सके।

फिलहाल उसका नया परिवार उसकी बहुत मदद कर रहा है। दुर्गा नादिया के बच्चों की देखभाल के अलावा कपड़े-बर्तन धोने और खाना पकाने में मदद कर रही है।

ज़ेबा की दूसरी बहन नसरीन कहती हैं कि दुर्गा जब तक चाहें उनके घर में रह सकती हैं और सब मिलकर उसके लिए कोई काम भी तलाश कर लेंगे।

'रमजान का महीना है और इस दौरान किसी ज़रूरतमंद की मदद करना हमारा इंसानी फ़र्ज़ भी है।'

(हफ्फपोस्ट के वलय सिंह की रिपोर्ट पर आधारित जनचौक के लिए कुमार मुकेश द्वारा प्रस्तुत। ज़ेबा और दुर्गा की कहानी सत्य है मगर उनके व परिवार के सदस्यों के नाम बदल दिए गये हैं।)

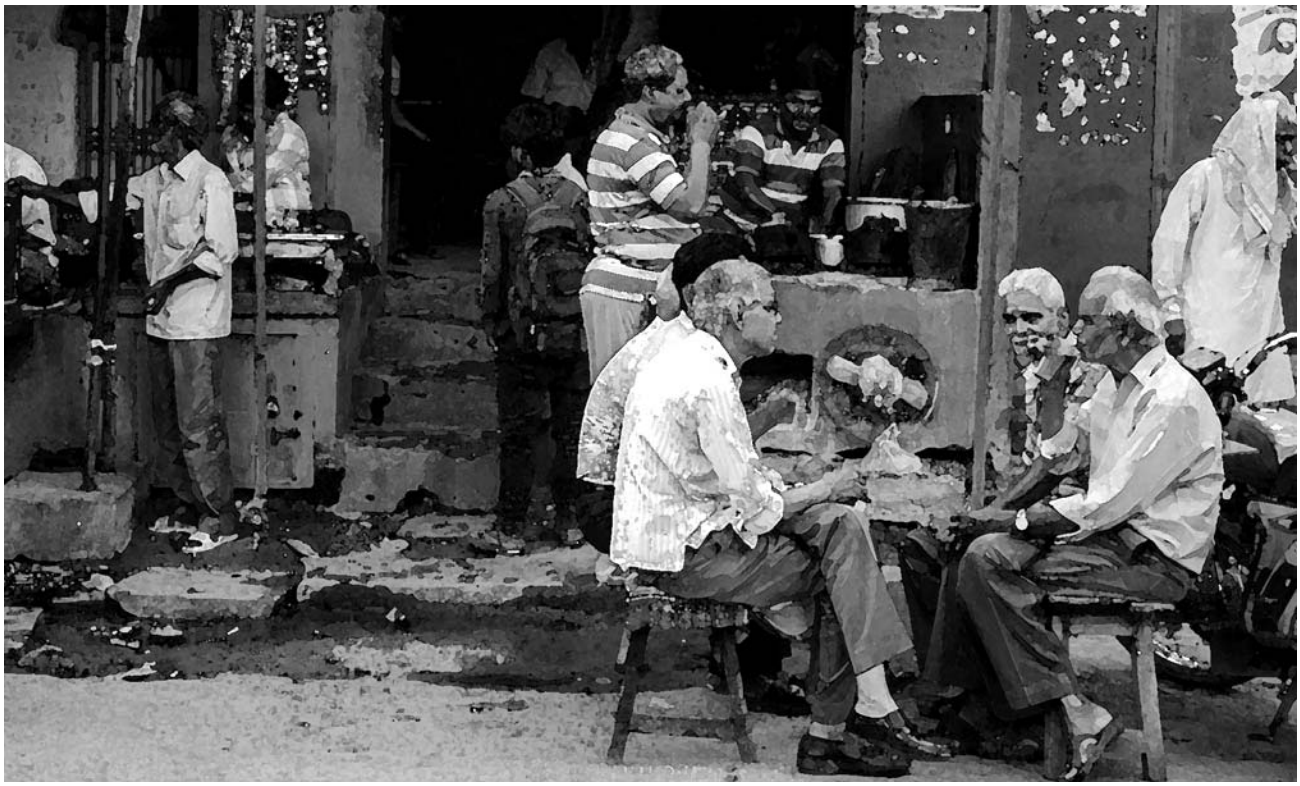

कोविड-19 के कारण हुए लॉकडाउन से खतरे में है बंगाल की अड्डा संस्कृति

■ **प्रभाकर मणि तिवारी**

कोरोना वायरस की वजह से जारी देशव्यापी लॉकडाउन ने पश्चिम बंगाल में सदियों पुरानी एक संस्कृति को खतरे में डाल दिया है। वह है अड्डा यानी गपशप की संस्कृति। रबींद्रनाथ टैगोर, सत्यजित रे से लेकर नेताजी सुभाष चंद्र बोस तक तमाम लोग इस संस्कृति को बढ़ावा देते रहे हैं। बंगाल के पुनर्जागरण में भी इसकी भूमिका बेहद अहम रही है।

चाय की दुकानों के अलावा काफी हाउस, मोहल्लों और पार्कों में आयोजित होने वाला यह अड्डा संस्कृति बांग्ला समाज में गहराई तक रचा-बसा है। इनमें देश-दुनिया से जुड़े तमाम मुद्दों पर बहसें होती रही हैं। लेकिन अब लॉकडाउन से यह खतरे में है। यही वजह है कि लॉकडाउन के दौरान भी राज्य के विभिन्न इलाकों में चाय की दुकानें खुल रही हैं। यहां लोग एक जून की रोटी के बिना तो जी सकते हैं, अड्डा के बिना नहीं। राज्य की इस संस्कृति पर देश-विदेश में कई शोध ग्रंथ भी छप चुके हैं। शायद इसी वजह से राज्य के विभिन्न इलाकों से लॉकडाउन के उल्लंघन की घटनाएं लगातार सामने आ रही हैं।

बांग्ला के अड्डा शब्द का शाब्दिक हिंदी

//

आम बंगाली फुर्सत के पलों में किसी भी मुद्दे पर घंटों तक अड्डा मार (बैठक कर) सकते हैं। यह कहना ज्यादा सही होगा कि अड्डा लोगों का एक ऐसा अनौपचारिक जमावड़ा है जहां किसी भी विषय पर चर्चा की जा सकती है। बंगाल में पुनर्जागरण के दौरान भी इस अड्डा संस्कृति ने विचारों के प्रचार-प्रसार में काफी अहम भूमिका निभाई थी।

अनुवाद करना तो मुश्किल है। लेकिन मोटे शब्दों में इसका मतलब उन अनौपचारिक बैठकों से है जहां चाय पीते हुए देश-दुनिया के किसी भी मुद्दे पर विस्तार से बहस की जा सकती है। किसी भी आम बंगाली से पूछ लें, वह इसे अपनी संस्कृति का अटूट हिस्सा बताएगा। आम बंगाली फुर्सत के पलों में किसी भी मुद्दे पर घंटों तक अड्डा मार (बैठक कर) सकते हैं। यह कहना ज्यादा सही होगा कि अड्डा लोगों का एक ऐसा अनौपचारिक जमावड़ा है जहां किसी भी विषय पर चर्चा की जा सकती है।

दिलचस्प बात यह है कि इन अड्डों में उम्र का कोई बंधन नहीं होता। यानी अगर 70 साल का कोई बुजुर्ग ऐसे किसी अड्डे में है तो वहीं 25 साल का युवक भी अपनी बात रख सकता है। बंगालियों में अड्डा उतना ही प्रिय है जितना रसगुल्ला। इसमें जिन मुद्दों पर बहसें होती रही हैं उनकी सूची अंतहीन है। इनमें लेखकों से लेकर उनकी रचनाएं, कविता, सिनेमा, राजनीति, नौकरशाही और खेल तमाम विषय शामिल हैं।

अड्डा संस्कृति ने आपसी भाईचारे को बढ़ाया

समाज के एक बड़े तबके को आपसी भाईचारे के धागे में बांधे रखने में इस अड्डा या अनौपचारिक बैठकों की भूमिका बेहद अहम रही है। यह अकेली ऐसी चीज है जिसमें तमाम जाति, धर्म और समुदाय के लोग शामिल होते रहे हैं। बंगाल में पुनर्जागरण के दौरान भी इस अड्डा संस्कृति ने विचारों के प्रचार-प्रसार में काफी अहम भूमिका निभाई थी।

बंगाल को अड्डा संस्कृति का जन्मस्थान भले कहा जाता हो, इस परंपरा की जड़ें प्राचीन ग्रीस में सुकरात और प्लेटो के आपसी कथोप-कथन तक तलाशी जा सकती हैं। शुरुआत में अड्डा लेखकों और बुद्धिजीवियों का जमावड़ा होता था जहां देश-दुनिया के समकालीन लेखन और कृतियों पर विस्तार से चर्चा की जाती थी। यह बैठकें अमूमन कॉफी हाउस या ऐसी ही जगहों पर होती थीं।

कोलकाता का ऐतिहासिक कॉफी हाउस तो सत्यजित रे से लेकर नेताजी सुभाष चंद्र बोस तक न जाने कितनी ही हस्तियों के अड्डों का गवाह रहा है। मोहल्ले की चाय दुकानों पर बिना दूध की चाय पीते हुए भी लोगों को अड्डा के दौरान तमाम मुद्दों पर बोलते देखना सामान्य है। बस इन बैठकों में शामिल किसी एक व्यक्ति के कोई मुद्दा छेड़ने भर की देरी होती है। उसके बाद तमाम लोग इसके पक्ष और विपक्ष में दलीलें देने लगते हैं।

सत्यजित रे समेत दूसरे फिल्मकारों के कॉफी हाउस के अड्डों के गवाह रहे पत्रकार तापस मुखर्जी बताते हैं, 'इन बैठकों के दौरान हर मुद्दे पर गर्मागर्म बहसें होती थीं। लेकिन मजाल है कि कोई शालीनता की सीमा लांघ जाए। हर तबके के लोग समान विचारधारा वाले लोगों के साथ नियमित रूप से कॉफी हाउस में जुटते थे। यह सिलसिला देर रात को कॉफी हाउस के बंद होने तक जारी रहता था।'

लॉकडाउन के कारण 'अड्डा' नहीं कर पा रहे लोग

पश्चिम बंगाल में शायद ही ऐसा कोई बंगाली मिले जिसने कभी न कभी अड्डा नहीं मारा हो। बंगाल के तमाम प्रमुख लेखकों-साहित्यकारों के लिए ऐसी बैठकें काफी उर्वर साबित होती रही हैं। इन बैठकों से ही उनको अनगिनत प्लॉट तो मिले ही हैं, कई चरित्र भी इनमें शामिल लोगों के आधार पर ही गढ़े गए हैं। इनमें तीन लेखकों प्रोमानंद मित्र, आशुतोष मुखर्जी और नारायण गंगोपाध्याय की ओर से गढ़े गए क्रमशः घाना दा, पिंडी दा और टेनी दा जैसे लोकप्रिय चरित्र शामिल हैं।

बांग्ला साहित्य के अजेय कृतियों के कई प्लॉट कॉफी हाउस में होने वाली बैठकों से ही निकले हैं। ऐसे कई अड्डों का हिस्सा रहे इतिहासकार सुब्रत कुमार गांगुली कहते हैं, 'अब लोग पहले की तरह खुल कर नहीं हंसते। हंसी में आने वाली यह कमी मौजूदा दौर और हमारी जीवनचर्या में बदलाव का एक अहम संकेत है।'

अब समय के साथ लोगों की व्यस्तता बढ़ने की वजह से भले ही अड्डों की तादाद या इनका समय कम हो गया हो, इसका मूल स्वरूप जस का तस है। लोग-बाग छुट्टी के दिन सुबह से ही अड्डा मारने में जुट जाते हैं। यह आम बंगाली की पहचान बन गया है। बीते तीन सप्ताह से जारी लॉकडाउन के दौरान यही आदत भारी तादाद में लोगों को घरों से निकलने पर मजबूर कर रही है। यही वजह है कि इस दौरान बंगाल में दो हजार से ज्यादा लोगों को लॉकडाउन के उल्लंघन या बेवजह चाय की दुकानों या बाजारों में जाने के आरोप में गिरफ्तार किया जा चुका है। अकेले कोलकाता में ही यह तादाद एक हजार से ऊपर है।

एक समाजशास्त्री सुविमल सेन कहते हैं, 'अड्डा आम बंगाली के खून में रचा-बसा है। यही उसे घरों से निकलने पर मजबूर कर देता है। लेकिन संकट के इस दौर में हमें खुद पर काबू रखना होगा। क्या इस लंबे लॉकडाउन से अड्डा संस्कृति खतरे में है? इस सवाल पर वह कहते हैं कि यह दौर तो देर-सबेर बीत ही जाएगा। इससे अड्डे मारने की प्रवृत्ति सामयिक तौर पर कम भले हो जाए, बाद में यह और मजबूत होकर उभरेगी।'

साभार : https://hindi.theprint.in

बॉयज़ लॉकर रूम के ताले खुलें इसके लिए बात करना ज़रूरी है

■ अफ़शां अंजुम

इस दुनिया में बेटियों की परवरिश मुश्किल है, लेकिन उससे भी ज़्यादा चुनौतीपूर्ण बेटों की परवरिश करना है। देर-सवेर सामने आते लड़कों के सीक्रेट ग्रुप बताते हैं कि इसकी परतें हमारे समाज और परवरिश के बीच उलझी हुई हैं।

पांच साल पहले आई फिल्म 'दृश्यम' याद है? अगर आपने ये फिल्म देखी है तो इसकी कहानी कभी नहीं भूल सकते।

एक मिडिल क्लास परिवार की लड़की स्कूल ट्रिप पर जाती है जहां एक लड़का उसका अश्लील वीडियो बना लेता है। बाद में उसके जरिये ब्लैकमेल करता है और तनाव इतना बढ़ जाता है कि बेटी की मां के हाथों उस लड़के की हत्या हो जाती है।

कहानी बेटी के पिता (अजय देवगन) और उस परिवार की है कि वो किस-किस जतन से ये पूरा मामला छिपा लेते हैं। यहां तक कि मारे गए लड़के की पुलिस अफसर मां (तब्बू) भी आख़िर तक कुछ नहीं जान पातीं।

पूरी फिल्म में आप जहनी तौर पर उस परिवार का हिस्सा बन जाते हैं और यही सोचते रहते हैं कि काश मर्डर के लिए उन्हें कोई न पकड़ पाए। अंत में जीत इस परिवार की ही होती है और लड़के के मां-बाप सबूत ढूंढते-ढूंढते हार जाते हैं।

कहानी में सस्पेंस, ड्रामा, इमोशन सब कुछ था। मैसेज भी था कि इस दुनिया में अपनी बेटियों की परवरिश करना मुश्किल चुनौती है। लेकिन उससे भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण है बेटों की परवरिश। यही बात अंत में ब्लैकमेलर बेटे के माता-पिता कबूलते भी हैं।

'बॉयज़ लॉकर रूम' मामला ऐसी सैकड़ों कहानियों की शुरुआत बनता नजर आया है। जहां लड़कियों के हमउम्र क्लासमेट उनका बलात्कार करने की कल्पना कर रहे हैं।

ये सोच जितना हैरान करती है उतनी ही डरावनी भी है। ये ग्रुप सिर्फ टाइम-पास के लिए शुरू किया गया लेकिन जैसे ही इसमें 50 से ज्यादा नाम जुड़े, बातों ने अश्लीलता से भी आगे बढ़ते हुए हिंसा का रंग ले लिया।

लड़कों ने लड़कियों की तस्वीरों को मॉर्फ करते हुए और अश्लील बनाया और ब्लैकमेलिंग भी शुरू कर दी। जो स्क्रीनशॉट्स सामने आए हैं उनमें एक लड़का अपने दोस्तों को गैंगरेप के लिए उकसा रहा है।

यकीनन गैंगरेप ऐसे ही किए जाते होंगे। जहां एक शख्स का वहशीपन बाकी सब पर भी हावी हो जाता होगा। जहां हमउम्र लड़के ये भूल जाते होंगे कि उनकी साथी लड़की उनकी सबसे अच्छी दोस्त हो सकती है, ठीक वैसे ही जैसे कोई दूसरा लड़का है।

आखिर वो कौन-सी चीज है जिसकी वजह से एक सभ्य परिवार, बड़े स्कूल और अच्छी जिंदगी के बीच आप बलात्कार करने को तैयार हैं। मनोवैज्ञानिक और रिसर्चर्स इसे यौन हिंसक किशोरावस्था कहते हैं।

आमतौर पर इस उम्र में कई युवा अपनी परेशानियों का हल सेक्स या उससे जुड़ी मानसिक हिंसा के जरिये ढूंढने लगते हैं। हालांकि इसकी परतें हमारे समाज और परवरिश के बीच उलझी हुई हैं।

हिंसक प्रवृत्ति कैसे बनती है मानसिकता का हिस्सा

दिल्ली की एक साधारण-सी कॉलोनी की बात है। एक घर में पति-पत्नी के बीच झगड़ा हो जाता है। इस परिवार में हर उम्र के सदस्य हैं, सास-ससुर, बहू-बेटा, पोता-पोती।

पति गुस्से में आपा खो बैठता है और पत्नी को मारना शुरू करता है। मारते-मारते उसे बालों से घसीटकर घर की छत तक ले जाता है। वो पत्नी से माफी मांगने को कहता है वरना उसे वहां से नीचे धक्का देने वाला है।

बच्चे अपनी मां को इस हाल में देख रहे हैं, सास-ससुर बहू को, लेकिन कोई उस आदमी को रोक नहीं रहा है। अंत में कुछ पड़ोसी जमा होकर नीचे से आवाज़ लगाते हैं और मामला संभालते हैं।

जरा सोचिए उस बेटे के लिए ये हालात क्या सबक छोड़कर जाएंगे। अपनी मां की बेइज्जती शायद उसकी जिंदगी का हिस्सा बन जाएगी।

मुमकिन है कि उसकी मानसिकता में महिलाओं को इसी बर्ताव के लायक समझा जाएगा। अब सोचिए उस बेटी के मन में क्या चलता होगा। उसे हिंसा से जूझने के लिए पहले ही तैयार हो जाना है क्योंकि उसने अपनी मां को इसी संघर्ष से गुजरते देखा है।

एक बात तो साफ है कि महिलाओं की इज्जत का पहला सबक आपको अपने परिवार में ही मिलता है। समाज की ये परत बच्चों से लड़कों में, और लड़कों से पुरुषों में तब्दील हो रहे चेहरों में खुलकर सामने आती है।

बॉयज़ लॉकर रूम का होना और डरावना है

'लॉकर रूम टॉक यानी 'सीक्रेट बातों' के लिए ऐसे किसी भी ग्रुप का बनाया जाना आम बात है। अश्लील जोक्स और सेक्स की कल्पना भी आम बात है।

लेकिन ये वो उम्र है जब लड़कों के दिमाग में लड़कियों के लिए अपनी सोच की असल जड़ें तैयार हो रही हैं। ये सोच आगे जाकर सामाजिक व्यवस्था पर गहरा असर डालती है।

ऐसे में जहां बरसों की जद्दोजहद के बाद निर्भया मामले में आए फैसले से राहत महसूस की जाती है, वहीं दिल्ली के बड़े स्कूलों के लड़के इतनी आसानी से अपनी क्लासमेट का गैंगरेप करने को तैयार बैठे हैं।

इस बात से सिर्फ बेटियों के ही नहीं बल्कि बेटों के माता-पिता को भी विचलित होने चाहिए। अगर युवाओं के किसी भी हिस्से को ये लगता है कि मर्दानगी के साथ उन्हें हर तरह की हिंसा का लाइसेंस मिल जाता है, तो उनके सामने खड़ी कोई भी महिला इस रेप-कल्चर की चपेट में आ सकती है।

फोर्ब्स की रिसर्च के मुताबिक 'जेंडर इनइक्वॉलिटी' में भारत 50 देशों में सबसे खराब रहा है। यहां बलात्कार के 90 फीसदी मामलों में पीड़ित महिला पुरुष को पहले से जानती हैं।

रॉयटर्स, द गार्डियन, वॉशिंग्टन पोस्ट और नेशनल ज्योग्राफिक जैसी अंतरराष्ट्रीय मीडिया संस्थाएं बरसों से महिलाओं के लिए भारत के असुरक्षित होने पर कवरेज करते रहे हैं। 'बॉयज़ लॉकर रूम' से डरिए मत क्योंकि समय रहते इसका बाहर आना जरूरी था, अब समय है कि आगे की सोची जाए।

बदलाव आना मुमकिन है

इस मामले के सामने आने पर बहुत से माता-पिता की बातें और सवाल सामने आए। कुछ ने कहा कि लड़के ऐसे ही होते हैं, बाद में ठीक हो जाते हैं। कुछ ने कहा कि लड़कियों को और सावधान रहना होगा। कुछ बस परेशान थे। लेकिन कई मांओं को मैंने खुलकर बोलते देखा, खासकर वो जिनके बेटे उम्र के इसी मोड़ से गुजर रहे थे।

हम ये नहीं भूल सकते कि जिंदगी के इस पहलू में मां-बाप की बड़ी भूमिका है इसीलिए हर मां अपने बेटे की गलती को गलत कहने में न कतराए और उसे शुरुआत से ही औरत की इज्जत करना सिखाए। पिता ये याद रखें कि वो अपने बेटे के लिए किसी भी फिल्मी हीरो ये ज्यादा बड़े रोल-मॉडल हैं। ऐसे में आधा बदलाव घर की चारदीवारी में ही लाया जा सकता है। बाकी आधे काम को पूरा करने के लिए हमें एक समाज के तौर पर लगातार उदाहरण बनाते रहने होंगे।

किसी क्लासमेट की गंदी तस्वीर बांटते लड़के को अपना ही दोस्त ऐसा करने से रोके तो शायद वो बात समझ जाए। अगर स्कूल और कॉलेज पढ़ाई के साथ-साथ लड़के-लड़कियों की बराबरी को भी अपना उद्देश्य बनाएं तो शायद बहुत फ़र्क पड़ेगा।

सेक्स को तालों में बंद न करते हुए उस पर अपने बच्चों से बात की जाए, तो शायद वो उसे अश्लीलता में तब्दील न करें। बदलाव के लिए ऐसी कई सीढ़ियां हमें 'शायद' कहकर चढ़नी होंगी, ताकि एक नीच सोच को बेहतर और साफ विचारों में तब्दील किया सके।

साभार : http://thewirehindi.com

इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067,
भारत, टेलीफोन : 091-26177904, टेलीफैक्स : 091-26177904
ई-मेल : notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : www.isd.net.in
केवल सीमित वितरण के लिए

मुद्रण : डिजाइन एण्ड डाइमेन्शंस, एल-5 ए, शेख सराय, फेज-II, नई दिल्ली-110017